

वैद्यकपरिभाषाप्रदीपका

सूचीपत्र ।



विषयः	पृष्ठाङ्काः	विषयः	पृष्ठाङ्काः
प्रथम खण्ड ॥		दूसराखण्ड ॥	
चन्दना	१	पंचविषकपाय	३५
ग्रंथकारका परिचय	११	स्वरसके लक्षण	३६
ग्रंथकारका अभिप्राय	११	स्वरसके पानकरनेकीमात्रा	३७
ग्रंथके प्रकाशकी भावश्यकता	११	स्वरसभेदसे पुटपाकविधि	११
कालिङ्गमान	२	कल्क	३८
मागधमान	८	कल्कभेद चूर्ण	११
आद्रंद्रव्यको दूना करनेकी		काय....	३९
विधि....	१०	शीत....	४०
द्रव्यकी योग्यता व अयोग्यता ...	१४	तन्दुलोदक	४१
स्नेहादिका गुणागुण	१५	फाण्ट	११
अष्टदेशजद्रव्य	१७	उष्णोदक	११
द्रव्यकी अश्रेष्ठता	१८	अबलेहादि....	११
भेषजोद्धारणा और भूतोप-		द्रव्यकी मात्राविधि	४३
सारणमंत्र	१९	पाचनादिके जलका परिमाण	४७
उद्धारणमंत्र	१९	पाचनके द्रव्यका परिमाण	४८
द्रव्यका संग्रहण करना	२०	यवागूआदिके साधनमें जल	११
औषधपरीक्षा	२१	व औषधिका परिमाण	११
औषधिके पद्वान्त्रेका उपाय	११	षट्द्रजल बनानेकी विधि	४९
विषयभेदसे क्रतुद्रव्यग्रहण	२२	कल्कका पेया	११
क्रतुभेदसे द्रव्याङ्गग्रहण....	११	यवागू बनानेकी विधि	५०
साधारणकरके द्रव्यग्रहण	२३	यवागूसाधनमें तन्दुलकी	
अन्यद्वेद्रव्योंका ग्रहणकरना	२५	परिभाषा	५३
एक द्रव्यके न होनेमें दूसरे		अग्नादिसिद्धकरनेमें जल-	
द्रव्यको ग्रहणकरनेकी विधि	२६	का परिमाण	११
		मण्डादिके लक्षण....	१
प्रथम खण्ड समाप्त ।		यवागूआदिका गुण	५४

विषयः	पृष्ठाङ्कः
यूष, पेया, विलेपीवनाने- की विधि	५४
मांसरससाधन	५५
लावके रसका पकाना	५६
प्रक्षेपकी विधि	५७
चूर्णादिके भक्षणकरनेका नियम	५८
द्रव्यविशेषमें मतान्तर	५९
दोषभेदसे मधुशर्करा प्रक्षे- पका विधान	५९
दूधादिके पाककी विधि....	५९
दूसरा खण्ड समाप्त ।	

तीसरा खण्ड ॥

स्नेहको सिद्ध करनेमें काय्य द्रव्य और जलका परिमाण	६०
स्नेहपाकके लक्षण	७१
गुड़पाकके लक्षण....	७१
गृगळपाकके लक्षण	७६
लौहशोधनादि परिभाषा	७७
लौहपाकके लक्षण	७९
भावनाविधि ।	८१
क्षारोदक	८२
द्विरुक्तद्रव्यका ग्रहणकरना	८३
चूर्णका पाकनिषेध	८६
अनुपानविधि	८६
अनुपानकी मात्रा	८७
लोहेका अनुपान	८८
विशेषअनुपान	८८
बालककी औषधीका प- रिणाम	८९
औषधी सेवन करनेमें अयो- ग्य बालककी विधि	९०

विषयः	पृष्ठाङ्कः
तीनप्रकारके बालक	९०
औषधी भक्षणकरनेके भाट काल	९१
" " " दशकाल	९१
" " " पांचकाल	९१
प्रथम काल	९४
दूसरा काल	९४
तीसरा काल	९५
चौथा काल....	९५
पांचवा काल	९५
क्रियाकालव्यवस्था	९६
चतुरमूल और पंचामूल	९८
मूत्रवर्ग	९९
चतुर्विधस्नेह	९९
चातुर्जात	१००
त्रिसुगन्धि वा त्रिजातक....	१००
सर्वगन्ध	१००
महती त्रिफला और स्वल्प त्रिफला	१०१
शूषण व विमद	१०१
क्षीरिवृक्ष	१०१
पंचपल्लव	१०१
पंचकाल वा पंचोषण	१०१
षडूषण	१०१
महत् पंचमूल, स्वल्पपंच- मूल, दशमूल	१०२
वल्लीज पंचमूल	१०२
कंदकाख्य पंचमूल....	१०२
अष्टवर्ग	१०२
जीवनीयगण	१०२
श्वेतमरिच	१०३
ज्येष्ठाम्बु और सुखोदक....	१०३
गुडाम्बु	१०३
घृतसार	१०३

विषयः	पृष्ठाङ्कः	विषयः	पृष्ठाङ्कः
अम्लमूलक.....	१०३	चतुर्थ खण्ड ।	
कटुर.....	१०३	पंचकर्म	१०९
तक्र, उद्धित और मयित	१०३	पंचकर्मविधि	११०
दधिकूर्चिका और तक्र-	१०३	वमन.....	१११
कूर्चिका.....	१०३	वमनका योग्यकाल	१११
सुक्त, सीधु और आसव	१०४	श्रेष्ठ वमनके लक्षण	११२
मैरेय और भारनाल	१०४	अश्रेष्ठ वमनके दोष	११३
बटक.....	१०४	अतिवमनके दोष ...	११३
कुशरा वा त्रिशरा	१०५	वमनऔषधिकी मात्रा	११४
सुक्तचूला	१०५	वमननिषेध	११५
आसव और आरुष्ट—	१०५	वमनके योग्य और अयोग्य	११५
सीधु और प्रसन्ना.....	१०५	वमनके रसकी मात्रा	११५
कादम्बरी, जगल और	१०५	वमनके लिये और औषधि-	११५
मेदक मद्य	१०६	योंकी मात्रा	११५
युक्कस और किल्लक	१०६	इति वमनभधिकार	११६
वाकणी वा ताड़ी	१०६	विरचन	११६
शुद्धसुता	१०६	विरचनके गुण	११६
सुक्त.....	१०६	विरचननिषेध	१२०
तुषाम्बु और सौवीर	१०६	विरचनके योग्य पुरुष	१२०
कांजी	१०७	विरचनकी मात्रा	१२१
दूसरी भांतिकी कांजी और	१०७	मृदु, मध्य और कृरकोष्ठ-	१२१
तुषोदक.....	१०७	भेदसे विरेचक औषधिकी	१२१
वनानेके लक्षण	१०७	मात्रा	१२१
शिण्डाकी	१०७	वमनविरचनकी चारप्रकार	१२२
मधुसुता	१०८	शुद्धि	१२२
पद्मपुष्प और काम्बलिकपुष्प	१०८	श्रेष्ठ विरेचनके लक्षण	१२३
तर्पण.....	१०८	अश्रेष्ठ विरेचनके लक्षण.....	१२३
मंथ	१०८	अधिक विरेचनके लक्षण.....	१२४
वृष्णोदक	१०९	विरचननिषेध	१२५
द्विषिध औषधिके गुण	१०९	इति विरेचनभधिकार	१२५
तीक्ष्ण पण्ड समाप्त ।		नस्य	१२६
		पंचविध नस्य	१२६

विषयः	पृष्ठाङ्काः	विषयः	पृष्ठाङ्काः
प्रतिमर्ष	१२७	ऊत्तरवस्ति	१४५
द्विविध अवपीड	"	नलबनुनेकी विधि	१४६
प्रथमन	१२८	ऊत्तरवस्ति के प्रयोग कर-	
शिरोविरेचन	"	नेकी विधि	"
नासके प्रयोगकी विधि	१२९	स्त्रियोंपर वस्ति के प्रयोगकी	
नासका निषेध	"	विधि	"
अनुवासन ।	१३०	स्त्रियोंकी उत्तरवस्ति का मात्रा	१४७
वस्ति के नल बनाने की विधि	"	कम या अधिक क्रिया के दोष	१४८
निरुहवस्ति	१३२	वस्ति के गुण	१४९
अनुवासन और आस्थापन-		इति उत्तरवस्ति ॥	"
निषेध	"	धूम के गुण	१५०
वस्ति क्रिया के नल का परिमाण	१३४	धूमपान के गुण	"
व्रणवस्ति का विधान	"	अकाल में या अधिक धूम-	
वस्ति के अच्छी तरह से हो-		पान के दोष	१५१
नेका लक्षण	"	पांच प्रकार का धूम	"
अनुवासन और वस्ति प्रयोग का		धूमपान की विधि	"
काल	१३५	प्रायोगिक, छैहिक, वैरेचन,	
कम और अधिक मात्रा से व-		कासहर और वामन धूमपा-	
स्ति प्रयोग करने के दोष	"	नकी विधि	"
अनुवासन और निरुहण की		धूम निषेध	१५२
मात्रा	"	इति धूमपान अधिकार ॥	"
सदा स्नेह वस्ति और निरुह-		कवल और गण्डूष धारण	"
ण के सेवन करने का दोष	१३६	चतुर्विध गण्डूष	"
अनुवासन और आस्थापन के		वातादि दोष भेद से कवल	
अयोग्य	१३७	और गण्डूष की विधि	"
इति अनुवासन अधिकारः	१३८	कवल और गण्डूष का परि-	
निरुह	"	माण	१५३
वातादि दोष भेद से निरुह	१३९	गण्डूष धारण करने का समय	"
द्रव्य की मात्रा	"	गण्डूष के हीनयोग और अ-	
निरुह की मात्रा	१४०	तियोग के दोष	१५४
आस्थापन योग के अयोग्य	१४१	गण्डूष धारण करने की शु-	
निरुह योग के योग्य	"	द्धि के लक्षण	"
श्रेष्ठ निरुह के लक्षण	१४२	कवल और गण्डूष की मात्रा	"
अश्रेष्ठ निरुह के लक्षण	१४५	इति कवल गण्डूष अधिकार	"
इति निरुह वस्ति अधिकारः	"		

विषयः	पृष्ठाङ्काः	विषयः	पृष्ठाङ्काः
रक्तमोक्षणविधि	१५४	अरणिङकेतेलकी मूर्च्छा....	१५७
विशुद्ध रधिरके लक्षण	१५५	तिलके तेलकीमूर्च्छा	"
नसके वेधनेकी विधि	"	तेलकी मूर्च्छा विधि	१५८
फस्त मुलानेके अयोग्य व		गन्धपाक	"
योग्य	"	गन्धद्रव्य ...	"
इति रक्तमोक्षणअधिकार	"	दूसरे गन्धद्रव्य	१५९
घृतमूर्च्छाविधि	१५६	दूसरे मतसे गन्धद्रव्य....	"
जड़वे तेलकी मूर्च्छा	"	इति सूचीपत्र सम्पूर्ण ॥	

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीविंकटेश्वर” छापाखाना—मुंबई.

वैद्यकपरिभाषाप्रदीप ।

भाषाटीकासमेत ।



नमोस्तुनीरदस्वच्छवपुपेपीतवाससे ।

यस्यास्येन्दुसुधावंशीपपौशब्दस्वरूपिणी ॥ १ ॥

दोहा ।

राधावर जलधरवरण, सुन्दर श्याम शरीर ।

मुखप्रफुल्ल मोहन मयन, हरिदासकी पीर ॥ १ ॥

शब्दस्वरूपिणी वंशोनै जिनके मुखचंद्रकी माधुरीको पान किया है, उन नवीन धनकी समान शरीर वाले, निर्मल तन-युक्त, और पीताम्बर धारणकिये हुए श्रीकृष्णको नमस्का-र है ॥ १ ॥

कृष्णवल्लभसेनस्यतनुजेनवितन्यते ।

श्रीमद्भोविन्दसेनेनपरिभाषाप्रदीपकः ॥ २ ॥

कृष्णवल्लभसेनके पुत्र श्रीमद्भोविन्दसेन करके यह “परिभाषाप्रदीप” नामक ग्रंथ संगृहीत हुआ है ॥ २ ॥

पूर्वमुनिभिरादिष्टास्वेस्वेतन्त्रेकचित्कचित् ।

परिभाषामयासासासमाहृत्यविलिख्यते ॥ ३ ॥

पूर्वकालके आयुर्वेदाचार्य मुनियोंने अपने २ बनाए ग्रंथोंमें कहीं २ जोपरिभाषाएँ लिखिहैं, उन सबका सारमर्म ग्रहण करके मेरे द्वारा यह ग्रंथ संगृहीत होता है ॥ ३ ॥

ध्वान्तेपथिचरिष्णूनांयथादीपःप्रदर्शकः ।

नानाशास्त्रज्ञभिपजांसंग्रहोऽयंतथाभवेत् ॥ ४ ॥

जिसप्रकार अन्धकारमें भ्रमण करनेके समय पथिकका मार्ग दीखताहै, वैसेही अनेक शास्त्रजानने वाले वैद्योंके लिये यह “ परिभाषाप्रदीप ” नामक ग्रंथ आयुर्वेद शास्त्रमें प्रवेश करनेका मार्ग दिखाने वालाहै ॥ ४ ॥

खण्डैश्चतुर्भिरादिष्टःसंग्रहोनातिविस्तरः ।

वैद्याःकुर्वन्त्वत्रयत्नंव्यवहारार्थमुद्यताः ॥ ५ ॥

यह “ परिभाषाप्रदीप ” ग्रंथ बहुत न बढ़ाकर चार खण्डमें इसकीप्रस्तावनाका विषय वर्णन किया गया । व्यवहार करने वाले वैद्योंको इस ग्रंथके प्रति यत्न प्रकट करना चाहिये ॥ ५ ॥

अव्यक्तानुक्तलेशोक्तसन्दिग्धार्थप्रकाशिकाः ।

परिभाषाःप्रकथ्यन्तेदीपीभूताःसुनिश्चिताः ॥ ६ ॥

आयुर्वेदशास्त्रके विषय परिभाषाके सम्बन्धमें कोई २ स्थल अव्यक्त अर्थात् स्पष्ट नहीं लिखागया । किसी २ स्थानमें अनुक्त अर्थात् कुछभी नहीं कहागया और किसी स्थलमें कुछही लिखाहै, उन सब स्थलोंका संशय दूर करनेके लिये अन्धकारका नाश करने वाले दीपककी समान यह “ परिभाषाप्रदीप ” नामक ग्रंथ लिखानाताहै । आयुर्वेदके सीखने वाले वैद्यलोगोंका निश्चयही इस पुस्तकसे बड़ा उपकार होगा ॥ ६ ॥

अथप्रपन्नतोमानसूधैलि • ॥

तस्माच्चिद्विविधंमानं कालिङ्गमागधंतथा ।

कालिङ्गान्मागधंश्रेष्ठमेवंमानविदोविदुः ॥ ७ ॥

फालिङ्गमान और मागधमान यह दोप्रकारके मानहैं, तिसमें फालिङ्ग मानकी चानिसयत मागधमानही श्रेष्ठहै । पलहे फालिङ्गमान लिखानाताहै ॥ ७ ॥

परिमाणं विना क्वापि नौपधा जायते फलम् ।

तस्मात् सर्वे यतन्ते ऽत्र परिमाणविधौ सदा ॥ ८ ॥

पहले मानसूत्र लिखते हैं । विना परिमाणके औषधिसे कभीभी आरोग्यरूप उत्पन्न हुआ फल प्राप्त नहीं होता । इसकारण वैद्योंको यत्नके सहित इस परिमाणके अनुसार औषधिका समस्त कार्यनिर्वाह करना चाहिये ॥ ८ ॥

शाङ्गधरस्त्वाह ।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ।

अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ ९ ॥

शाङ्गधरनें कहा है कि, विना परिमाणके किसी द्रव्यके प्रयोगसे फल प्राप्त नहीं होता । तिसके लिये प्रयोगका सुभीता करनेको मुझकरके यह मानसूत्र लिखा जाता है ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

मानापेक्षितमाचार्य्याभेपजानां प्रकल्पनम् ।

मे निरेयत्ततो मानमुच्यते पारिभाषिकमिति ॥ १० ॥

दूसरे ग्रंथमें कहा है, और आयुर्वेदाचार्य भी कहा करते हैं कि औषधिके प्रयोग करनेकी कल्पनाके सम्बन्धमें परिमाणके विना किसी फलके प्राप्त होनेकी सम्भावना नहीं; इसकारण पारिभाषिक मानसंज्ञा कहो जाती है ॥ १० ॥

तत्तु मतभेदान्नानाविधं भवति ।

जालान्तरगतैः सूर्यकरैर्ध्वंसी विलोक्यते ।

पङ्क्वन्तीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः शङ्खभिश्च राजिका ॥ ११ ॥

तिसृभिराजिकाभिश्च सर्पपः प्रोच्यते बुधैः ।

यवो ऽष्टसर्पपैः प्रोक्तो गुंजा स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ १२ ॥

पङ्क्तिभिश्च रत्तिकाभिः स्यान्मापको हेमधामकौ ।

मापेश्वतुर्भिर्मानः स्याद्धरणं तन्निगद्यते ॥ १३ ॥

टंकः स एव कथितस्तद्वयं कोल उच्यते ।

क्षुद्रमोटरकश्चापि द्रक्ष्यं सन्निगद्यते ॥ १४ ॥

कोलद्वयं च कर्पः स्यात्सप्रोक्तं पाणिमानिकः ।

अक्षः पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम् १५ ॥

विडालपदकं चैव तथा पोडशिका मिता ।

करमध्यो हंसपदं सुवर्णकवडग्रहः ॥ १६ ॥

उडुम्बरश्च पर्यायैः कर्प एव निगद्यते ।

स्यात्कर्पाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ १७ ॥

शुक्तिभ्यामर्द्धपलं ज्ञेयं मुष्टिमात्रश्चतुर्थिकाः ।

प्रकुञ्चपोडशी विल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ १८ ॥

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते ।

प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोर्द्धशरावकः ॥ १९ ॥

अष्टमानश्च स ज्ञेयः कुडवाभ्यामष्टमानिका ।

शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ २० ॥

शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थचतुः प्रस्थैस्तथा ढकम् ।

भाजनं कंसपात्रे च चतुःषष्टिपलश्च तत् ॥ २१ ॥

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशोलल्वणोर्मणः ।

उन्मानश्च पटोराशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञितः ॥ २२ ॥

द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः ।

शूर्पाभ्यामष्टभवेद्द्रोणी वृहद्द्रोणी च सा स्मृता ॥ २३ ॥

द्रोणी चतुष्टयं सारी कथिता सृक्ष्मबुद्धिभिः ।

चतुःसहस्रपलिकापण्णवत्यधिकाचसा ॥ २४ ॥

पलानांद्विसहस्रञ्चभारएकःप्रकीर्तितः ।

तुलापलशतज्ञेयःसर्वत्रैपविनिश्चयः ॥ २५ ॥

मापटङ्काक्षविल्वानिकुडवःप्रस्थआढकः ।

राशिर्द्रोणीखारीचेतियथोत्तरंचतुर्गुणाः ॥ २६ ॥

मतभेदसे परिमाण अनेक प्रकारका है; पहलेका लिङ्ग मान कहा जाताहै, जालीके द्वारा गृहमें जो सूर्यकी किरण आनकर गिरतीहै, इस किरणके मध्यमें जो बड़े छोटे २ परमाणु दिखाई देतेहैं तिनको ध्वंसी कहते हैं । उन छैः ध्वंसीकी एक मरीचि, छः मरीचिकी एक राजिका ॥११॥ तीन राजिकाकी एक सरसों, आठ सरसोंका एक जौ, चार जौकी एक गुंजा (रत्ति) ; छः रत्तीका एक मासा । हेम और धामक यह दो नाम भी मासेके हैं । चार मासेकी एक शान (आधा तोला) ; इसके दूसरे नाम धरण और टंकभीहै । दो शानका एक कोल (१ तोला) , क्षुद्र, मोरटक और द्रक्षण उसके दूसरे नामहैं । दो कोलका एक कर्प (२ तोला) ; पाणि माणिक, अक्ष, पित्रु, पाणितल, किंचित्, पाणि, तिन्दुक, बिडाल, पदक, पोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवड- यह और उडम्बर यह कर्प शब्दके दूसरे नाम हैं । दो कर्पका एक अर्द्धपल (४ तोला) ; शुक्ति और अष्टमिका इसके दूसरे नामहैं । दो अर्द्धपल या दो शुक्तिका एकपल (८ तोला) ; मुष्टिमात्र, चतुर्थिका, प्रकुञ्च, पोडशी और विल्व; एकपलके यह सब दूसरे नाम हैं । दो पलकी एक प्रसृति; प्रसृत इसका दूसरा नामहै । दो प्रसृतिकी एक अंजलि; कुडव, अर्द्धशराव और अष्टमान, यह इसके दूसरे नाम हैं । (चक्रदत्तके टीकाकारनें " कुडवोऽष्टपलौ " अर्थात् कुडव शब्दसे ८ पल अर्थात्

६४ तोला इस प्रकारकी व्याख्याकी है ।) दो कुडवकी एक मानिका; शराव और अष्टपल इसके दूसरे नाम हैं । दो शरावकी एक प्रस्थ । चार प्रस्थका एक आढक; भाजन, कंस और पात्र इसके दूसरे नाम हैं, (६४ पलका १ आढक होता है) चार आढकका एक द्रोण (३२ सेर) कलस लव्बन, अर्मन, उन्मान, घट और राशि यह सब द्रोणके दूसरे नाम हैं । दो द्रोणका एक सूर्य, (६४ सेर) कुम्भ इसका दूसरा नाम है (६४ शरावका एक सूर्य होता है) दो सूर्यकी एक द्रोणी (१२८ सेर); इसका दूसरा नाम बृहत् द्रोणी है । चार द्रोणीकी १ खारी (४००० छयानवे पल अर्थात् ५५२ सेरकी एक खारी होती है) दो हजार पल अर्थात् २५० सेरका एक भार होता है और एक शतपल अर्थात् १२॥ सेरकी एक तुला होती है ॥

मापा, टंक, (शान) अक्ष (कर्प) बिल्व (१ पल, ८ तोला, कुडव (३२ तोला) प्रस्थ (२ सेर) आढक (८ सेर) राशि (अर्थात् द्रोण ३२ सेर) द्रोणी (१२८ सेर) और खारी (५१२ सेर) यह क्रमानुसार चतुर्गुण, अर्थात् मासेसे टंक चतुर्गुण, टंकसे अक्ष चतुर्गुण, अक्षसे बिल्व चतुर्गुण और कुडवसे प्रस्थ चतुर्गुण होता है । इत्यादि ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

गुञ्जादिमानमारभ्ययावत्स्यात्कुडवस्थितिः ।

द्रव्याद्रंशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं सत्तम् ॥ २७ ॥

प्रस्थादिमानमारभ्यद्विगुणञ्चद्रवाद्वयोः ।

मानन्तथातुलायाश्चद्विगुणं न कचित्स्मृतम् ॥ २८ ॥

एक रतिसे लेकर कुडवतक द्रव (गला, पतला, पानीसा) गोले और सूखे द्रव्यकी समान परिमाण अर्थात् औषधिका द्रव्यग्रहण करनेके समय द्रव (तरल) आर्द्र (भीजा हुआ) और सूखे द्रव्यका जैसा परिमाण (१ रतिसे लेकर कुडवतक) लिखाहो सो तितनाही ग्रहणकरे । प्रत्यसे लेकर ऊपरको चाहें जितना परिमाण हो, द्रव, आर्द्र और सूखे द्रव्यके असली परिमाणसे दूना द्रव्य ग्रहणकरे ॥ २७॥२८ ॥

मृदृक्षवेणुलौहादेर्भाण्डंयच्चतुरङ्गलम् ।

विस्तीर्णञ्चतथोर्ध्वञ्चतन्मानंकुडवं वदेत् ॥ २९ ॥

मिट्टी, वृक्ष, वांश और लोहेका बना हुआ पात्र, चार अंगुल लम्बा, चार अंगुल चौड़ा और चार अंगुल ऊंचा हो इतने पात्रमें जितना जल अथवा तरल द्रव्य आसकताहै तिसको कुडव (अर्द्ध सेर) परिमाण कहतेहैं ॥ २९ ॥

यदौषधस्तुप्रथमंयस्ययोगस्यकथ्यते ।

तन्नामैवसयोगोहिकथ्यतेतत्रनिश्चयः ॥ ३० ॥

औषधिकायोग (नाम) कहनेके समय इस योगके पहले जिस औषधिका वर्णनहो, उस द्रव्यके नामानुसार इस योगका नाम निश्चय होगा । जैसे " दार्व्यादि पाचन " के पहिले दार्वी (दारुहलदी) कर्लिंग (इन्द्रजौ) मजीठ, वृहती, दारु, गुडूची, इस प्रकार लिखा रहनेसे उक्त दार्वीके प्रथम रहनेसे इसका नाम दार्व्यादि पाचन हुआहै ॥ ३० ॥

अथ मागधपरिभाषाः ।



त्रसरेणुस्तुविज्ञेयः त्रिशद्भिः परमाणुभिः ।
 त्रसरेणोस्तुपर्यायनामध्वंसीनिगद्यते ॥ ३१ ॥
 पङ्ध्वंसीभिर्मरीचिः स्यात्पण्मरीच्यस्तुसर्पपः ।
 पट्सर्पपैर्यवस्त्वेकोगुञ्जैकाचयवैस्त्रिभिः ॥ ३२ ॥
 गुंजाभिर्दशभिः प्रोक्तो मापको ब्रह्मणापुरा ।
 द्वेमाधमकश्चैव पर्यायस्तस्य कीर्तितः ॥ ३३ ॥
 चतुर्भिर्मापकैः शाणः सनिकाष्ठकमेव च ।
 धरणशब्दोन्नयोच्यः अन्यत्र शाणपर्याये लिखितत्वात्
 शाणौ द्वौ द्रक्ष्ये विद्यात्कोलंवटकमेव च ॥ ३४ ॥
 कर्पाद्धद्विगुणं कर्पसुवर्णश्चाक्षमेव च ।
 किञ्चिद्भिर्द्वालपदकं पिचुः पाणितलं तथा ॥ ३५ ॥
 उडुम्बरं तिन्दुकश्च कवडग्रहमेव च ।
 द्वे सुवर्णे पलाद्धे स्याच्छ्रुतिरष्टमिका तथा ॥ ३६ ॥
 द्वे पलाद्धे पलं मुष्टिः प्रकुञ्चश्च चतुर्थिका ।
 विल्वं पोडशिकाग्रश्च द्वे पले प्रसृतं विदुः ॥ ३७ ॥
 कुडुवः प्रमृताभ्यां स्यादञ्जलिः सनिगद्यते ।
 अष्टमानं शरावार्द्धं तस्य पर्यायमेव च ॥ ३८ ॥
 कुडुवाभ्यां मानिका स्याच्छरावोऽष्टपलं तथा ।
 माणिकाभ्यां भवेत्प्रस्थो ज्ञेयः पोडशभिः पलैः ॥ ३९ ॥

चतुःप्रस्थैराढकः स्यात्पात्रकंसश्चभाजनम् ॥

अयंभिपग्भिराख्यातश्चतुष्पष्टिपलैरिह ॥ ४० ॥

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कथितः पूर्वसूरिभिः ।

घटः कलश उन्मानो लल्वणो र्मण एव च ॥ ४१ ॥

द्रोणपर्यायनामानि कीर्तितानि भिपग्वरैः ।

अयञ्च पल संख्यातः पट्पंचाशच्छतद्वयम् ॥ ४२ ॥

द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःपष्टिशरावकः ।

शूर्पाभ्याञ्च भवेद्द्रोणी बृहद्द्रोणी च सा स्मृता ॥ ४३ ॥

द्रोणी चतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ।

चतुःसहस्रपलिकापण्णवत्यधिका च सा ॥ ४४ ॥

तुला पलशतं प्रोक्तं भारः स्याद्विंशतिस्तुला ।

पलानां द्विसहस्राणि भारः परिमितो बुधैः ॥ ४५ ॥

मागधमानकहा जाता है । तीसपरमाणुका एक त्रसरेणु, ध्वंसी इसका दूसरा नाम है । छय ध्वंसीकी एक मरीचि, छय मरीचिकी एक सरसों, छय सरसोंका एक जौ, तीन जौकी एक गुंजा या रत्ति, दश रत्तीका एक मासा, इसके दूसरे नाम हेम और धामक है । ४ मासेकी एक शान, इसका दूसरा नाम निकाष्ठक है (धरणशब्दभी किसी ग्रंथमें शानका पर्याय दिखाई देता है) । दो शानका एक द्रंक्षण कोल बटक और कर्पाडं इसके दूसरे नाम है । २ द्रंक्षणका एक कर्प; सुवर्ण, अक्ष, किञ्चित्, बिडालपदक, पित्रु, पाणितल, उडु म्वर, तिन्दुक और कवड ग्रह इसके दूसरे नाम हैं । दो कर्पका एक पलादं; शुक्ति और अष्टमिका इसके दूसरे नाम हैं । दो शुक्तिका एक पल (८ तोला) मुष्टि मकुञ्च, चतुर्थिका

विल्व और पोड़शिकाम्र इसके दूसरे नाम हैं । दो पलका एक प्रसृत, दो प्रसृतका एक कुडव अंजलि अष्टमान और शरावार्द्ध इसके दूसरे नाम हैं । दो कुडवकी एक माणिका, शराव और अष्टपल इसके दूसरे नाम हैं । दो माणिका (१६ पल) का एक प्रस्थ; चारप्रस्थ (६४ पल) का एक आढ़क; पात्र, फंस और भाजन इसके दूसरे नाम हैं । चार आढ़क या २५६ पलका एकद्रोण, घट, कलस, उन्मान, लल्वन और अर्मण इसके दूसरे नाम हैं । दो द्रोण या ६४ शरावका एक सूर्य, इसका दूसरा नाम कुम्भ है । दो सूर्यकी एक द्रोणी, इसका दूसरा नाम बृहत् द्रोणी है । चारद्रोणी या चार हजार छियानवे पलका एक खारी होता है, ऐसा चतुरवैद्योंने कहा है । एक शतपलकी एक तुला, बीसतुला या दो हजार पलका एक भार होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

मापकः शानतिन्दूके पलकुडवप्रस्थकः ।

राशिद्रोणीखारीचेतियथोत्तरंचतुर्गुणाः ॥ ४६ ॥

मापक, शान, तिन्दुक, (कर्प) पल, कुडव, प्रस्थ, राशि, द्रोणी और खारी, यह उत्तरोत्तर क्रमानुसार चतुर्गुण हैं अर्थात् मापासे शान चतुर्गुण है, शानसे तिन्दुक चतुर्गुण है, तिन्दुकसे पल चतुर्गुण इत्यादि ॥ ४६ ॥

शुष्कद्रव्येष्विदं मानं द्विगुणश्च द्रवाद्वयोः ।

ज्ञातव्यं कुडवादूर्ध्वं प्रस्थादिश्रुतिमानतः ॥ ४७ ॥

औषधादिका परिमाण जिस प्रकारसे लिखा गया, सो केवल शुष्क द्रव्यके परिमाण सम्यग् है । परंतु कुडवके ऊर्ध्वपरि

माणसे द्रव और गीले द्रव्यको परिणामकी अपेक्षा दूना ग्रहण करे ॥ ४७ ॥

शुष्कद्रव्येतुयामात्राच्चाद्रस्यद्विगुणाहिसा ।

शुष्कस्यगुरुतीक्ष्णत्वात्तस्मादर्द्धप्रकीर्तितम् ॥ ४८ ॥

शुष्क द्रव्यके ग्रहण करनेका जैसा परिमाण है, यदि सूखे द्रव्यकी जगह गोला द्रव्य करना हो तो कहे हुए परिमाणसे दूना ग्रहण करे । और जहां पर गीले द्रव्यके ग्रहण करनेकी विधि है जो उस जगह सूखा द्रव्य ग्रहण करना हो तो भारी और तीक्ष्णादि द्रव्यके गुण विचारकर सूखे हुए द्रव्यका आधा वजन ग्रहण करे ॥ ४८ ॥

१ कुडवमैक्याद्वैगुण्यं नेत्यत आह । कुडवादूर्ध्वमिति ।

अर्थात् यहांपर यह प्रश्न हो सकता है कि मूलमें “ कुडवादूर्ध्व ” यह लिखा है यहांपर कुडवसे द्रव और आर्द्र द्रव्यका दूना ग्रहण करना उचित है या नहीं इसके उत्तरमें कोई २ कहते हैं कि—

अयमभिसन्धिः कुडवाद्द्व्यल्लोपेपंचमीकुडवंव्याप्येत्यर्थः ।

केचिदत्रव्याचक्षतेतन्मतेकुडवस्यापिद्वैगुण्यम् ॥

अर्थात् कोई २ कहते हैं कि कुडव शब्दमें द्व्यल्लोपकरके पंचमी विभक्ति मिली है अतएव कुडवसे भी दूना ग्रहण करना चाहिये । और कोई कोई इस मतके विरोधी हैं यथाः—कुडवादिति दिग्योगलक्षणां पंचमीये वदन्ति, तन्मते लडवे द्वैगुण्यं नास्तीति ।

अर्थात् कोई कोई कहते हैं कि “ कुडव ” में दिग्योगलक्षणा पंचमीके विद्यमान होनेसे कुडवका दूना ग्रहण करना ठीक नहीं है यथाः—

गुग्गादिमानमारभ्ययावत्स्यात्कुडवस्थितिः ।

द्रव्यार्द्रशुष्कद्रव्येषुतुल्यमानंप्रकीर्तितमिति वचनात् ।

अस्यार्थः ॥ रक्तिकादिमारभ्य कुडवादवाक् तुल्यं मानम् ।

अर्थात् ऊपर कहे हुए मतका यह प्रमाण है, यथाः—रक्तीसे कुडव तक तुल्य परिमाणमें औषधि ग्रहण करनेकी विधि जानी वैद्य लोगोंकरके कहा गया है, यही युक्ति संगत है । विशेषकरके इस प्रकारकी विधि इस ग्रंथमें पहले भी कही है ।

अस्यापवादमाह ।

वासानिम्बपटोलकेतकिललाकूष्माण्डकेन्दीवरी ।
वर्षाभूकुटजाश्वगन्धसहितास्तापूतिगन्धामृता ॥

निश्चलकरने इसप्रकारसे व्याख्याकी है । यथा:-

कुडवमारभ्यद्वैगुण्यमेतेनकुडवस्यापि

द्वैगुण्यंनिश्चलकरेणैवव्याख्यातम् ।

निश्चलकर कहता है कि द्रव और भार्द्र द्रव्यके कुडवकी भी दूना ग्रहण करे । अतएवोक्तम्-

सर्पिःखण्डजलक्षौद्रतैलक्षीरासवादिषु ।

अष्टौपलानिकुडवोनारिकेलेश्चशस्यते ॥

ऊपर कहे हुए मतके प्रमाणमें निश्चलकरने आयुर्वेदके आचार्योंका वचन दिखाया है । यथा-धी खांड (इक्षुजात) जल, शहत, तैल दूध और आसव (मद्यविशेष) आदिके कुडवकी जगह ८ पल अर्थात् १ सेर ग्रहण करे । यह मतभी सब जगह नहीं माना जाता । यथा:-

अनित्यापरिभाषेयथादर्शनमुच्यते ।

दन्तीपृतेकुडुमाद्येतैलेसावुपयुज्यते ।

ननारिकेलेखण्डेचनतैलेपलमुच्यते ॥

ऊपर कही हुई विधि केवल दन्तीपृत और कुडुमाद्य तैलमेंही व्यवहारकी जाती है । इसके सिवाय नारियल, खांड और साधारणतैलके पाकमें चार पलसे एक कुडव ग्रहण करे । (भाधसेर) इसका प्रमाण यथा:-

कुडवेकदाचिद्विषयथादन्तीपृतेस्मृतमिति ।

अर्थात् कुडवकीभी कहीं २ दूना ग्रहण करना चाहिये । यथादन्ती पृतमें कुडवका दूना होनेसे द्विगुण (८ पल) ग्रहण करना ठीक है ।

अनेनापिनिःसन्देहोनप्रतिपाद्यतेइति ।

यतोदन्तीपृतमात्रेद्वैगुण्यमस्ति, न सर्वत्र ।

कण्ठोक्त्याःकचिदितिपाठात् ॥

परंतु इस प्रमाणसे भी निःसन्देह होकर कुछभी ठीक नहीं किया

मासंनागवलांसहाचरपुरांहिंग्वार्द्रकेनित्यशः ।

ग्राह्यास्तत्क्षणमेवनद्विगुणितयेवेशुजातागणाः ४९

“धनाइतिवापाठः।”

वासक (विसोंटा) नीम, पटोल (परवल) केतकी, खरें-टी, पेठा, शतावरी सांठ, कुडा, असगंध, पसरन, गिलोय, मांस, गंगेरन, कटसरैया, गुग्गुलु, ह्रींग, अदरक, और गन्ने-से उत्पन्न हुए द्रव्य (खांड, गुड, चिनी और मिश्री आदि) सदां गीलेही ग्रहण करे । इनका दुगना ग्रहण न करे ॥ ४९ ॥

अन्यच्च ।

गुडूचीकुटजोवासाकूष्माण्डश्चशतावरी ।

जासकता । क्योंकि केवल दन्तीघृतमें कुडवसे दूना ग्रहण करनेकी विधि दिखाई देतीहै और कहीं नहीं । और “ कुडवे कदाचिद्वित्वम् ” इत्यादिके पाठसे यही समझाजाताहै कि कहीं २ कुडवसे दूना ग्रहण करना चाहिये ।

अत्रोच्यते ।

कुडवे माणिकायां तुलायां पलमानेचद्वैगुण्यं नास्तीति

इस श्लोकसेभी मालूम होताहै कि कुडव, माणिक, तुला और पल जहांपर कहा है तहांपर दूना ग्रहण करना ठीक नहीं ।

कुडवेमाणिकायांचतुलामानेतयैवच ।

पलोह्लेखागतेमानेनद्वैगुण्यमिहेष्यतइति ॥

इस वचनसे स्पष्ट जाना जाता है कि कुडव, माणिक, तुला, और पल जहां २ पर लिखा है, तहांपर दूना ग्रहण न करे ॥

अतएवकुडवस्यनद्वैगुण्यंकिन्तुनिश्चलकर

व्याख्या-दन्तीघृतएव, नान्यत्रेतिसंक्षेपः ।

इस कारण सिद्धान्त यह हुआ कि कुडवसे दूना ग्रहण करना किसी मतमें ठीक नहीं । निश्चल करनें जो व्याख्याकी है सो केवल दन्तीघृतके लिये, और किसी औषधिके सम्बन्धमें नहीं है ।

अश्वगन्धासहचरीशतपुष्पाप्रसारणी ॥ ५० ॥

प्रयोक्तव्याःसदैवाद्विगुणान्नचकारयेत् ।

शार्ङ्गधरमतमेतत् ॥

गिलोय, कुडा, विसोंटा, पेठा, शतमूली, असगन्ध, फटस-
रैया, सोया, पसरन यह सब द्रव्य नये (ताजे) और गीले
ही औषधिमें प्रयोगकरे । इनको दूना ग्रहणकरना ठीक नहीं ।
शार्ङ्गधरका यह मतहै ॥ ५० ॥

अन्यञ्च ।

वासाकुटजकूष्माण्डशतपुष्पासहामृता ।

प्रसारण्यऽश्वगन्धाचनागाख्यातिवलावलाः ॥ ५१ ॥

नित्यमाद्र्वाःप्रयोक्तव्यान्तासां द्विगुणोभवेत् ।

हस्तीकर्णपलाशवाल्यालकगोरक्षतण्डुलाश्चेतत् ५२

दूसरा प्रकार कहा जाताहै, तथा विसोंटा, कुडा, पेठा, सोया,
गिलोय, पसरन, असगन्ध, गंगेरन, कंभी, हस्तीकर्णपलाश, खरेंटी,
सहदेई, चवलाई और गोरखमुण्डी इन सब द्रव्योंको सदा गीला
ग्रहण करे। इनको दूना ग्रहण करनेका नियम नहीं है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथद्रव्याणामुपयुक्तानुपयुक्तमाह ।

शुष्कंनवीनंद्रव्यंचयोज्यंसकलकर्मसु ।

आर्द्रञ्चद्विगुणंविद्यादेपसर्वत्रनिश्चयः ॥ ५३ ॥

योग्य और अयोग्य द्रव्यके विषयमें कहा जाताहै । यथा:-
नया द्रव्य सुखाकर सब प्रकारकी औषधिमें प्रयोगकरे ।
यदि उसका गीला प्रयोग करना बहुतही आवश्यकहो तो
योग्य परिमाणकी चनिस्वत दूना प्रयोग करे । इसमतको
सब मानतेहैं ॥ ५३ ॥

अन्यच्च ।

द्रव्याण्यभिनवान्येवप्रशस्तानिक्रियाविधौ ।

ऋतेघृतगुडक्षौद्रधान्यकृष्णाविडङ्गकम् ॥ ५४ ॥

दूसरे मतमें कहाहै कि घी, गुड, सहद, धानियां, पीपल और चायाविडङ्ग इनके सिवाय और समस्त औषधिही चिकित्सा कार्यमें नवीन भेष्टहैं घृतादि कई द्रव्य जितने पुराने हों उतनेही अधिक फलदायकहैं ॥ ५४ ॥

प्रसङ्गात्स्नेहादेर्गुणागुणमाह ।

स्नेहसिद्धोगुडादिश्चगुणहीनोऽब्दतोभवेत् ।

स्नेहाद्याःपूर्णवीर्याःस्युराचतुर्मासतःपरम् ॥ ५५ ॥

अब्दादूर्ध्वघृतंपक्वंहीनवीर्यंतुतद्भवेत् ।

तैलेविपर्ययंविद्यात्पक्वेऽपक्वेविशेषतः ॥ ५६ ॥

“तैलमत्रतिलभवंनसर्पपादिस्नेहसामान्यपरम् ।”

स्नेहादिके (घृत तैलादि) गुणागुणका वर्णन किया जाता है । स्नेहादिमें पके हुए गुडादि एक वर्ष पीछे वीर्यहीन होजातेहैं । स्नेहादि (पकाहुआ तेल) चार मासके पीछे पूर्ण वीर्यको प्राप्त होताहै । पकाहुआ घी एक वर्षके पीछे वीर्यरहित हो जाताहै । पका, बेपका दोनों प्रकारका तेलही जितना पुराना होगा, उतनाही अधिकफलदायक होगा ऐसा नियम केवल तिलके लिये है, सरसों आदिके साधारण तेलमें यह नियम उचितनहीं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अन्यच्च ।

गुणहीनंभवेद्वर्षादूर्ध्वतद्रूपमौषधम् ।

मासद्वयात्तथाचूर्णहीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥ ५७ ॥

हीनत्वं गुटिका लेहौ लभेते वत्सरात्परम् ।

हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मापाधिकास्तथा ॥ ५८ ॥

औषध्योलघुपाकाः स्युर्नवीर्यवत्सरात्परम् ॥

पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवं धातवोरसाः ॥ ५९ ॥

स्नेहादिका वर्णन दूसरी प्रकारसे किया जाता है । एक वर्षके पीछे साधारणतः प्रायः किसी औषधिमेंही वीर्य हीन रहता । चूर्णकी हुई औषधि दो मासके पीछे वीर्यहीन होजाती है । गोलियें, लड्डू और अवलेह एक वर्षके पीछे वीर्यरहित होजाती हैं । चार मासके पीछे घी और तैलादि वीर्यरहित होते हैं । पाकमें हलकी समस्त औषधियें भी एक वर्षके पीछे वीर्यरहित हो जाती हैं । आसव (मद्यविशेष) धातु द्रव्यादि और पारा यह जितने पुराने हों उतनेही अधिक गुणदायक हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

शार्ङ्गधरेणैवोक्तम् ।

व्याधेर्युक्तं यद्रव्यं गणोक्तमपि तत्त्यजेत् ।

अनुक्तमपि युक्तं यद्योजयेत्तत्र तद्बुधः ॥ ६० ॥

१ हीनाः स्युर्घृततैलाद्या इति तैलमत्र कटु तैलकम् ।

तन्निष्पादित दशमूल तैलादि च ज्ञेयं नान्यत् ॥

इस श्लोककी व्याख्यासे यह निश्चय किया जाता है कि ऊपरके श्लोकका तात्पर्य कि चार मासके पीछे घृत तैलादि हीनवीर्य होजाते हैं—केवल कटु तैल (सरसोंका तेल) से उत्पन्न हुए (दशमूल तैलादि) पके तेलके सम्बन्धमें जानना ।

अवदादूर्ध्वघृतपक्वहीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ।

तैले विपर्ययं विद्यात्पकेऽपके विशेषतः ॥ इति वचनात् ॥

ऊपरका मत ठीक नहीं है । एक वर्षके पीछे घृत हीनवीर्य होजाता है, तेल इसके विपरीत है । अर्थात् तेल (सरसोंके पके हुए तेलके सिवाय) एक वर्षके पीछे अधिक गुणकारक होता है ॥

रोगके लिये जो द्रव्य अयोग्यहै वह द्रव्य यदि गणम कहाहो तो उसको ग्रहण न करे। और रोगके लिये द्रव्य योग्य है, वह यदि गणमें न लिखाहो, तो बुद्धिमानको विचारके साथ उसका प्रयोगकरना चाहिये ॥ ६० ॥

अथ प्रशस्तदेशजद्रव्यमाह ।

आग्नेयाविन्ध्यशैलाद्याःसौम्यो हिमगिरिर्मृतः ।

ततस्तान्यौषधानि स्युःप्रशस्तानिक्रियाविधौ ॥ ६१ ॥

विन्ध्यादि पर्वत आग्नेय गुणवालेहैं और हिमालयादि पर्वत सोमगुणवाले हैं । इन दोनों स्थानोंमें उपजी हुई औषधियोंमें भी तैसेही गुणहोंगे । अत एव आग्नेय गुण बढ़ानेके लिये विन्ध्यादि पर्वतकी और सोमगुण बढ़ानेके लिये हिमालयादि पर्वतकी उत्पन्न औषधिही चिकित्सामें श्रेष्ठहै ॥ ६१ ॥

अन्येष्वपि प्ररोहन्ति वनेषूपवनेषु च ।

गृह्णीयात्तान्यपिभिषग्वनेशैलेविशेषतः ॥ ६२ ॥

इन पर्वतोंके सिवाय वन उपवनके और पवित्रस्थानोंमें जो औषधादि उत्पन्न होतीहैं, तिनकोभी चिकित्सक ग्रहणकरे । परन्तु पर्वती औषधि सबसे श्रेष्ठहै ॥ ६२ ॥

अन्येष्व्याहुः ।

धन्वसाधारणेवापि गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ।

पूर्वाश्रितं वामतिमानौषधं तद्विचक्षणः ॥ ६३ ॥

धन्वदेश (मरुभूमि और जांगलदेश) और साधारण देशोंमें जो औषधादि उत्पन्न होतीहैं, चतुर वैद्यको उचितहै, कि उत्तर दिशा या पूर्वदिशासे तिनको ग्रहणकरे ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

धन्वसाधारणदेशेमुदावृत्तरतःशचौ ।

अवैकृतमनाक्रान्तंसर्वीर्यग्राह्यमौषधम् ॥ ६४ ॥

धन्वदेश और साधारणदेशोंके पवित्र स्थानोंमें जो औषधियाँ उत्पन्नहोतीहैं सो अविकृत (स्वाभाविक) और कीड़े आदि-की खाई हुई न हो, ऐसा देखकर, वीर्यवाली औषधि ग्रहण करे ॥ ६४ ॥

अत्र निषेधमाह ।

देवतालयवल्मीककूपराख्याःश्मशानजाः ।

अकालतरुमूलोत्थान्यूनाधिकविचिन्तना ॥

जलाग्निकिमिसंक्षुण्णाओषध्यस्तुनसिद्धिदाः ॥ ६५ ॥

जिन स्थानोंसे औषधि ग्रहण करनेका निषेध है सो कहा जाताहै यथा:-देवालय और वंमर्हके ऊपर जमीहुई, कूपमें जमी हुई मार्गके निकट जमीहुई, मसानमें उत्पन्न हुई और वृक्षकी जड़में जमीहुई औषधियोंको ग्रहण न करे। अकालमें उत्पन्नहुए वृक्ष (उत्पन्न होनेके समयको छोड़कर और समय उत्पन्न हो) अपने आकारसे कहीं छोटे वृक्ष, बड़े अथवा बहुत समयमें उत्पन्न हुई और जल अग्नि व कीटादि करके दूसरी अवस्थाको प्राप्त हुई औषधियोंकी चतुर वैद्य ग्रहण न करे क्योंकि यह फलदायक नहीं होती ॥ ६५ ॥

अन्यच्च ।

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोपरमार्गजाः ।

जन्तुवह्निहिमव्याप्तानौषध्यःकार्यसाधिकाः ॥ ६६ ॥

१ " धन्यः देवादिशेषः " मरुभूमिजाङ्गलयोः संसृष्टलक्षणेदेश इति । अर्थात् धन्वदेश शब्दसे मरुभूमि और जाङ्गलदेश यह दोनोंही समझेजातेहैं ।

वंमईके ऊपर, कुत्सितस्थानमें, जलजदेशमें, श्मशानमें
खारीस्थानमें या मार्गके निकट जो औषधियां उत्पन्न होती
हैं, और जो कीड़े, आग और शिशिर (शीत) से सताई
गई हैं सो औषधियें फलदायक नहीं होतीं । इस
कारण ऐसे स्थानोंकी औषधियोंका ग्रहण करना ठीक
नहीं ॥ ६५ ॥

अथ भेषजोद्धारणमंत्रभूतापसारणञ्च ।

ॐ निवसन्ति हि भूतानि यान्यस्मिन्कानि च द्रुमे ।

अपक्रामन्त्वतस्तानि प्रजार्थं पात्यते द्रुमः ॥ ६७ ॥

ॐ वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः ।

ये भूतास्तेऽप सर्पन्तु वृक्षादस्माच्छिवाज्ञया ॥ ६८ ॥

औषधि उखाडनेके पहले ऊपर कहा हुआ “ओं निवस-
न्ति हि” इत्यादि मंत्र पढ़ै । उस मंत्रका अर्थ:-इस वृक्ष पर
वेताल, पिशाच, राक्षस, सर्पादि जिस प्रकारके प्राणी रहते हैं
वह शिवकी आज्ञाके अनुसार इस वृक्षसे, अलग हों क्योंकि
यह वृक्ष जीवोंका रोग दूर करनेके लिये उखाडता हूँ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अथोद्धारणमंत्र ।

ॐ येन त्वां खनते ब्रह्मा येन द्रोणेन केशवः ।

तेनाहं त्वां खनिष्यामि मंत्रपूतेन पाणिना ॥ ६९ ॥

औषधि तोडनेके समय ऊपर कहा हुआ मंत्र पढ़ै इस
मंत्रका अर्थ यह है कि:-जिस निमित्त तुमको ब्रह्मा, इन्द्र और
केशवादिनें जो पवित्र हस्तसे मंत्रपढ़कर उखाडा है, मैं भी
उसी हाथसे तुमको मंत्र पढ़कर उखाडता हूँ ॥ ६९ ॥

भूतादिमुक्तयेभ्यर्च्य सायं प्रातश्च सम्मुखे ।

श्राद्धैरुपोषितैर्ग्राह्यं भेषजं कर्मकृद्भवेत् ॥ ७० ॥

जो वैद्य उपवासी रहकर सन्ध्या अथवा प्रातःकालमें शिवकी पूजाकरके पितृगणोंका पार्वणादि श्राद्धकार्य करनेके पीछे औषधि लावे तो वह औषधविशेष फलदायक होती है ॥ ७० ॥

अथौषधद्रव्याङ्गग्रहणमाह ।

सारःस्यात्खदिरादीनां निम्बादीनां च वल्कलम्
फलन्तु दाडिमादीनां पटोलादेश्छदस्तथा ॥ ७१ ॥

खयरादिका (लालचन्दन, श्वेतचन्दन, देवदारु आदिका) सार, नीम आदिकी (बेल, श्योनाक, गम्भारी आदिकी) छाल दाडिमादिके फल, और परवल आदिके पत्र ग्रहण करने चाहिये ॥ ७१ ॥

शार्ङ्गधरस्त्वाह ।

न्यग्रोधो देस्त्वचोग्राह्याः सारः स्याद्वीजकादितः ।
तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात्त्रिफलादितः ॥ ७२ ॥
“न्यग्रोधः वटः”

वट, पीपल आदि वृक्षोंकी छाल, विजय सारादि वृक्षका (खैर, चन्दनादिक) सार, ताड़ादिके पत्र और त्रिफला आदिके फल ग्रहण करे । शार्ङ्गधरका यह मत है ॥ ७२ ॥

अन्यञ्च ।

महान्तियानि मूलानि काष्ठगर्भानि यानि च ।
तेषां तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि कृत्स्नशः ॥ ७३ ॥

जिन वृक्षोंकी मूल, स्थूल, (मोटी) हैं और जिनके भीतर सारवान काष्ठ है तिनका वल्कल ग्रहण करे । छोटे वृक्षकी जड़के भीतर सार नहीं है वह सबही, अर्थात् मूल, पत्र और पौदे सहित ग्रहण करले ॥ ७३ ॥

अन्यञ्च ।

अतिस्थूलजटायाश्चतासांग्राह्यास्त्वचोध्रुवम् ।

गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानिसकलान्यपिवुद्धिमान् ॥ ७४ ॥

जो बड़े वृक्ष बड़ी जड़वाले हैं, तिनकी छाल और जो वृक्ष छोटे हैं तिनको समूल ग्रहण करले ॥ ७४ ॥

निर्देशः श्रूयते तन्त्रे द्रव्याणां यत्र यादृशः ।

तादृशः संविधात्तव्यः शास्त्राभावे प्रसिद्धतः ॥ ७५ ॥

औषधि ग्रहण करनेके विषयमें शास्त्रमें जिस स्थानमें जैसा अंग ग्रहण करनेकी विधि लिखी है, वहांपर उसको ही ग्रहण करे ॥ ७५ ॥

व्याधिप्रशमने पूर्वज्ञापितानि पृथग्जने ।

विस्फारितान्यौषधानि पश्चाद् राजनियोजयेत् ॥ ७६ ॥

रोगको दूर करनेवाली औषधि नवीन तैयारहो, तो पहला उसका व्यवहार साधारण लोगोंको कराकर परीक्षासे गुण औ-
गुण जान तिसके उपरान्त राजाओंको व्यवहार करावे ॥ ७६ ॥

१ अस्यार्थः । यत्र यत्र द्रव्येषु अङ्गानामवयवानां यादृशो निर्देशः श्रूयते तादृश एव ग्राह्यः । यथा अमृतादिपाचने- “ अमृताविषपटोलनिम्बपत्रमिति ” अत्र पत्रमेव ग्राह्यम् । न चल्कलम् । पत्रस्य कण्ठोक्तत्वात् । अंग-
सामान्योक्तौ मूलस्य चल्कलेनैव व्यवहार इति शुरुवः । अंगेष्वनुक्ते विहितन्तु मूलमिति वचनात् ।

अर्थात् शास्त्रमें जिसस्थानपर जैसी विधि कही है, वहांपर वही ग्रहण करना । पहले कहे हुए वचनके अनुसार समस्त कार्य सिद्ध नहीं होता । जैसे अमृतादि पाचनमें नीमके पत्ते लिखे हैं, यहांपर निश्चय छालको ग्रहण नकरके पत्रही ग्रहण करे । औषधि ग्रहण करनेमें यदि किसी स्थानमें अंग (छालमूलादि) न कहे हो तिसस्थानमें गुरु उप-
देशके अनुसार कार्य करे ॥

२ “ पृथग्जने ” इति जनान्तरे । ३ “ विस्फारितानि ” विशेषेण स्फूर्तानि ।

तथा-

गोपालतापसव्याधमालाकारवनेचरान् ।

पृष्ठानामानिजानीयाद्देपजानांचशास्त्रतः ॥ ७७ ॥

औषधिका नाम नजाना हुआहो तो गोपाल, तपस्य, व्याध (शिकारी), माली, कुली, लोगोंसे पूछ कर, औषधिका नाम जाने ॥ ७७ ॥

विषयभेदेऽतुद्रव्यग्रहणम् ।

शरद्वखिलकम्मार्थग्राह्यं सरसमौषधम् ।

विरेकवमनार्थचवसन्तान्तेसमाहरेत् ॥ ७८ ॥

सब प्रकारकी औषधिके लिये सरस औषध शरत्कालमें, और वमन, विरेचनके लिये ग्रीष्मकालमें ग्रहण करे ॥ ७८ ॥

अथ ऋतुभेदे द्रव्याद्ग्रहणमाह ।

मूलानिशिशिरेग्रीष्मेपत्रंवर्षावसन्तयोः ।

त्वक्कन्दौशरदिक्षीरं यथार्तकसुमं फलाः ।

अथ सामान्योक्तौद्रव्यग्रहणमाह ।

पात्रोक्तौचापिमृत्पात्रमुत्पलेनीलमुत्पलम् ।

शकृद्रसेगोमयरसंचन्दनेरक्तचन्दनम् ॥ ८० ॥

सिद्धार्थःसर्पपेयाह्योलवणेसैन्धवंमतम् ।

मूत्रेगोमूत्रमादेयंविशेषोयत्रनेरितः ॥ ८१ ॥

पयःसर्पिःप्रयोगेपुगव्यमेवप्रशस्यते ।

स्त्रियश्चतुष्पदेग्राह्याःपुमांसोविहगेपुच ॥ ८२ ॥

जाङ्गलानां वयस्थानां चर्मरोमनखादिकम् ।

हित्वाग्राह्यं पूतमासं सास्थिकं खण्डशःकृतम् ॥ ८३ ॥

पक्तव्यमाजमासंचविधिनाघृततैलयोः ।

हित्वास्त्रीपुरुषंचापि क्लीबंतत्रापि दापयेत् ॥ ८४ ॥

वालिनश्च वयस्थश्च सुवीर्यश्च सुदेहिनम् ॥

न वृद्धश्च न बालश्च अवीर्यस्त्रावशोणितम् ॥ ८५ ॥

भलीभांतिसे पात्र न कहा गया हो तो मिट्टीका बना हुआ पात्र ग्रहण करे । उत्पल शब्दसे नीलोत्पल ले जहांपर शकृत् रस (मलकारस) वहांपर गोमय रस, और जहांपर चन्दन लिखा है वहांपर लालचन्दन ग्रहण करे । सर्पप शब्दसे सफेद सरसों, लवण शब्दसे सेंधानोन, जहां पर मूत्र लिखा हो वहांपर गोमूत्र (सप्रसवा स्त्रीजातिका) ग्रहण करे । दूध और घी

बहुत जड़े होती हैं अथवा जड़का स्थान गोलाकार और बड़ा होता है तिसको कन्द कहते हैं, जैसे चिता शतावरी आदि बहुत जड़वाली और जिमीकंद व बिंदारीकंद आदि गोलाकार युक्त बड़े होते हैं ।

१ परन्तु चूर्ण, लेह, आसव और स्नेह बनाना हो तो तिसके स्थानमें श्वेत चन्दन ग्रहण करना चाहिये । काढ़े और लेपके विधानमें लालचन्दनको ग्रहण करे यथा:-

तथा-

गोपालतापसव्याधमालाकारवनेचरान् ।

पृष्ठानामानिजानीयाद्देपजानांचशास्त्रतः ॥ ७७ ॥

औपधिका नाम नजाना हुआहो तो गोपाल, तपस्वी, व्याध (शिकारी), माली, कुली। लोगोंसे पूछ कर औपधिका नाम जाने ॥ ७७ ॥

विषयभेदेऋतुद्रव्यग्रहणम् ।

शरद्यखिलकम्मार्थं ग्राह्यं सरसमौपधम् ।

विरेकवमनार्थंच वसन्तान्ते समाहरेत् ॥ ७८ ॥

सब प्रकारकी औपधिके लिये सरस औपध शरत्कालमें, और वमन, विरेचनके लिये ग्रीष्मकालमें ग्रहण करे ॥ ७८ ॥

अथ ऋतुभेदे द्रव्याग्रहणमाह ।

मूलानि शिशिरे ग्रीष्मे पत्रं वर्षा वसन्तयोः ।

त्वक्कन्दौ शरदिक्षीरं यथर्तु कुसुमं फलम् ॥

हेमन्ते सारमौपध्या गृह्णीयात्कुशलोभिपक्व ॥ ७९ ॥

अस्यार्थः ।

यथेति यास्मिन् ऋतौ यद्यत् पुष्पं फलञ्च भवति तस्मिन्नेव तत्तद्ग्राह्यमित्यर्थः ॥

चतुर वैद्यको चाहिये कि शीतकालमें मूल, ग्रीष्मकालमें पत्र, वर्षाकालमें चकल, वसन्तकालमें फन्द (मूलविशेष) शरत्कालमें निपांस (गोंद) और हेमन्त कालमें सार ग्रहण करे । जिस वृक्षका फल फूल जिस ऋतुमें उत्पन्न होवे, उसको उसी ऋतुमें ग्रहण करे ॥ ७९ ॥

१ मूल और फन्दुमें भेद यह है कि जिस वृक्षमें एक मूल होता है वितर्का मूल कहते हैं यथा-राखना भारंगी आदि । और जिस वृक्षमें

अथ सामान्योक्तौद्रव्यग्रहणमाह ।

पात्रोक्तौचापिमृत्पात्रमुत्पलेनीलमुत्पलम् ।

शकृद्रसेगोमयरसंचन्दनेरक्तचन्दनम् ॥ ८० ॥

सिद्धार्थःसर्पपेग्राह्योलवणैसैन्धवंमतम् ।

मूत्रेगोमूत्रमादेयंविशेषोयत्रनोरितः ॥ ८१ ॥

पयःसर्पिःप्रयोगेपुगव्यमेवप्रशस्यते ।

स्त्रियश्चतुष्पदेग्राह्याःपुमांसोविहगेपुच ॥ ८२ ॥

जाङ्गलानांवयस्थानांचर्मरोमनखादिकम् ।

हित्वाग्राह्यंपूतमासंसास्थिकंखण्डशःकृतम् ॥ ८३ ॥

पक्तव्यमाजमासंचविधिनाघृततैलयोः ।

हित्वास्त्रीपुरुषंचापिक्लीवंतत्रापिदापयेत् ॥ ८४ ॥

वालिनश्चवयस्थश्चसुवीर्यश्चसुदेहिनम् ॥

नवृद्धश्चनवालश्चअवीर्यस्त्रावशोणितम् ॥ ८५ ॥

भलीभांतिसे पात्र नकहागयाहो तो मिट्टीका बनाहुआ पात्र ग्रहणकरे । उत्पल शब्दसे नीलोत्पल ले जहांपर शकृत्तरस (मलकारस) वहांपर गोबरका रस, और जहांपर चन्दन लिखाहै वहांपर लालचन्दने ग्रहणकरे । सर्पप शब्दसे सफेद सरसों, लवण शब्दसे सेंधानोन, जहां पर मूत्र लिखाहो वहांपर गोमूत्र (सप्रसवा स्त्रीजांतिका) ग्रहणकरे । दूध और घी

बहुत जड़े होतीहैं अथवा जड़कास्थान गोलाकार और बड़ा होताहै तिसको घन्द कहते हैं, जैसे चिता शतावरी भादि बहुत जड़वाली और जिमीकंद व विदारीकंद भादि गोलाकार युक्त बड़े होतेहैं ।

१ परन्तु चूर्ण, लेह, आसव और स्नेह बनानाहो तो तिसके स्थानमें श्वेत चन्दन ग्रहण करना चाहिये । काढ़े और लेपके विधानमें लालचन्दनको ग्रहणकरे यथा:-

लिखाहै तो वहाँपर मायका दूध और गायका घी ग्रहणकरे ।
 चौपाये पशुओंमें मादा, और पक्षीजातिमें नरको ग्रहणकरे ।
 जंगली पशुओंमें मध्यम उमरवालोंको ग्रहणकरे । और चर्म
 रोम व नखादि व्यवहार न करने योग्य द्रव्यादिको छोड़कर
 हड्डीके सहित मांसके टुकड़े २ करले । घृत और तेलके पाक
 सम्बन्धमें विधिपूर्वक छागका मांस ग्रहण करनाहो तो नरव
 मादा जातिको छोड़कर बलवान, मध्यम उमरवाला, वीर्य-
 वान और श्रेष्ठशरीरवाला क्लीब (नपुंसक-स्वस्ती) जाति ग्रह-
 णकरे । वृद्ध, कम उमरका, वीर्यहीन, यारक्तस्त्रावका, या
 जिसमें किसीप्रकारका दोषहो तिसको ग्रहण नकरे ॥ ८५ ॥

काशीराजमतेनैवछागमेवनपुंसकम् ।

अभावादप्रतिज्ञाद्वावृद्धवैद्योपदेशतः ॥

वन्ध्याछागीविपक्तव्यानतुशास्त्रमतंचरेत् ॥ ८६ ॥

चूर्णलेहासवस्नेहाःसाध्याधवलचन्दनैः ।

कपायलेपयोःप्रायोयुज्यतेरक्तचन्दनम् ॥

भावप्रकाशे ॥

१ एतद्वेतुगर्भं विशेषणम् । असन्धिस्तु छान्दसः । अथवा न वीर्यम्
 अवीर्यम् अल्पायुर्नञ् तेनाल्पशुक्रम् । अतएव काशीराजाभिप्रायेण
 नपुंसकस्य विधिना सूचितमेव, शरीरारम्भकत्वादल्पवीर्यत्वं वीर्यम-
 स्तेष्व इत्यर्थः । अतः स्त्रावशोणितायाश्छाग्यास्त्वनुपयोगित्वम् ।
 अर्थादस्त्रावशोणिताया ग्राह्या इत्यर्थः ॥ स्त्री प्रकृत्या वन्ध्या छाग्या अ-
 स्त्रावशोणितात्वमस्येव तस्माद्वन्ध्या छाग्यपि योज्या इति नपुंसक-
 भाषादनुशासनात् ॥

२ अभावादिति नपुंसकस्य अलभात् । अथवा नपुंसकस्य वीर्याभा-
 यात् वीर्यमस्ति न वेति काकदन्तवत् । अप्रतिज्ञाद्वाशास्त्रमिति शास्त्र-
 नम् आह । काशीराजमतेनैवेत्यादिरूपेण ॥ केचित्तु कृत्रिमनपुंसक-
 मपि ददति । तदसत्तत्तु प्रकृतिश्च पुरुषएव । ननु वन्ध्याया नपुंसकस्य
 च छागस्य अपत्यजनकत्वं नास्ति, तत्कथमपत्यकामिनः प्रवर्तन्ते छा-

काशिराजका मतहै कि छाग-जातिका नपुंसक ग्रहणकरना चाहिये । नपुंसक छाग नहो अथवा प्रतीक्षा (विलम्ब) करनेका समय नहो तो वृद्ध वैद्यके उपदेशके अनुसार वांश्-ज्ञागी करके पाकका कार्य पूराकरे । परन्तु आयुर्वेद शास्त्र इससे सम्मत नहींहै । नहोतमेंही ऐसा करना चाहिये ॥ ८६ ॥

शृगालवर्हिणोःपाकेपुमांसंतत्रदापयेत् ।

मयूरीजम्बूकीछागीवीर्यहीनास्वभावतः ॥ ८७ ॥

शृगाल और मोरके मांससे घृत तैलादि पाक करनाहो तो नरजातिका मांस ग्रहण करना चाहिये । क्यों कि मोरनी, शृगाली, और भेड़ यह स्वभावसेही वीर्यहीन होतीहै ॥ ८७ ॥

स्त्रीणामूत्रंगवांतीक्ष्णंनतुपुंसांविधीयते ।

पित्तात्मिकाःस्त्रीयोयस्मात्सौम्यास्तुपुरुषामताः ॥

क्षीरमूत्रपुरीपाणिजीर्णाहारेतुसंहेरेत् ॥ ८८ ॥

गायका गोमूत्र ग्रहण करना चाहिये । परन्तु अनयानी गायका मूत्र ग्रहण करना ठीक नहीं । बैलका मूत्र ग्रहण नकरे क्योंकि स्त्रीजातिका मूत्र आमेषत्वके हेतु करके तीक्ष्ण और नरजातिका मूत्र सोमगुणयुक्त होताहै । दूध, मूत्र और पुरीष (मल) आहार पचनेके अन्तमें ग्रहणकरे ॥ ८८ ॥

अथानुक्तद्रव्यग्रहणम् ।

कालेनुक्तेप्रभातंस्यादङ्गेनुक्तेजटाभवेत् ॥ ८९ ॥

गलादिघृतादिषु कदाचित् क्रियासिद्धेरभावः स्यादतश्चिन्तयम् ॥ अर्थात् काशिराजका ऊपर कहा हुआ मत केवल अभावके पक्षमें ही है । कोई कोई कृत्रिम नपुंसकके द्वारा घृततैलादिका पाक बनाया करतेहैं, परन्तु यह युक्तिसिद्ध नहीं है । क्योंकि यह प्रकृतिसे पुरुषनार्थपदे ॥

भागेऽनुक्तेषु साम्यस्यात्पात्रेऽनुक्तेषु मृन्मयम् ॥

द्रवेऽनुक्ते जलं विद्यात्सर्वत्रैष विनिश्चयः ॥ ९० ॥

काल न कहाहो तो प्रातःकाल, औषधिका अंग न कहाहो तो मूल, भाग न कहाहो तो समभाग, पात्र न कहाहो तो मिट्टी-का बनाहुआ पात्र और द्रव द्रव्य न बतलायाहो तो तिसके स्थानमें सब जगह जल ग्रहणकरे ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अथाभावे द्रव्यग्रहणम् ।

मधुयत्र न विद्येत तत्र जीर्णो गुडो मतः ।

पुरातन गुडाभावे रौद्रेयामचतुष्टयम् ॥ ९१ ॥

संशुष्य नूतनं ग्राह्यं पुरातन गुडैर्विना ।

क्षीराभावे भवेन्मौद्गोरसो मासूर एव वा ॥ ९२ ॥

मधुके अभावमें पुराना गुड ग्रहणकरे । पुराना गुड नहो तो नया गुड चार प्रहर तक धूपमें सुखाकर प्रयोग करे । दूध न होतो मूंग अथवा मासूरके जूसको ग्रहण करे ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

सिताभावे च खण्डः स्याच्छाल्यभावे च पट्टिकः ।

असम्भवे च द्राक्षाया गम्भारीफलमिष्यते ॥ ९३ ॥

न भवेदाडिमो यत्र वृक्षाम्लं तत्र दापयेत् ।

सौराष्ट्रमृदभावे च ग्राह्या पङ्कस्य पर्पटी ॥ ९४ ॥

न तंतं गरमूलं स्यादभावे शीहलीजटा ।

प्रयोगे यत्र लौहः स्यादभावे तन्मलं विदुः ॥ ९५ ॥

सर्पपः शुक्रवर्णो यः सहसिद्धार्थ उच्यते ।

तत्र सिद्धार्थकाभावे सामान्यः सर्पपो मतः ॥ ९६ ॥

बुरा न होतो खांड, शालि धान्य नहो तो सखी धान्य, दाखके

अभावमें गम्भारी फल, दाढिमके अभावमें विषामिल, सौरा-
ट्टकी मिट्टीके अभावमें पंकपपडी ग्रहण करे, तगरकी जड़के
अभावमें शीहलीजडा और लोहके अभावमें लौहमल ग्रहण
करे । श्वेत सरसोंको सिद्धार्थ करते हैं, इस सिद्धार्थका
अभावहो तो इसके बदलेमें साधारण सरसों ग्रहण करे
॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

चविकागजपिप्पल्योःपिप्पलीमूलमेवच ।

अभावेपिप्पलीमूलंहस्तिपिप्पलिचव्ययोः ॥ ९७ ॥

अभावेपृश्निपर्ण्याश्चसिंहपुच्छीविधीयते ।

॥ नित्यंमुञ्जंतिकाभावेतालमस्तकमिष्यते ॥ ९८ ॥

चव और गजपिपलके अभावमें पीपलामूल ग्रहण करे
पीपलामूलके अभावमें गजपीपल, पिठवनके अभावमें शाल-
पर्णी (सरिवन) और मुंजतिका (मूँज) के अभावमें ताल-
मस्तक ग्रहण करे ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

कङ्कुमस्याप्यभावेऽपिनिशाग्राह्याभिपग्वरैः ।

मुक्ताभावेशङ्खचूर्णवज्राभावेवराटिका ॥ ९९ ॥

कर्कटशृङ्गकाभावेमायाम्बुचेप्यतेबुधैः ।

धान्यकाभावतोदद्याच्छतपुष्पाभिपग्वरः ॥ १०० ॥

वाराहीकन्दकाभावेचर्मकारालुकोमतः ।

मूर्वाभावेत्वचोग्राह्याजिगिन्यात्रुवतेसदा ॥ १०१ ॥

(१) पाठान्तरमेतत्, न पुनरुक्तदोषः ।

(२) " सिंहपुच्छी " शालपर्णी ।

(३) मञ्जुफलमिति केचित् ।

(४) तालसदृशवृक्षः स्यात्, सच देशान्तरे ख्यातः ॥

(५) कर्कटशृङ्गिकाभावे मायाम्बुजीमिष्यते इतिपाठान्तरम् ।

कुङ्कुमके अभावमें कच्चीहलदी, मुक्ताके अभावमें शंखचूर्ण,
 हीरेके अभावमें वैकान्त (मणिविशेष चुम्बक) कांफ-
 डार्शुगीके अभावमें मायाम्बुजीज (माजूफलकेबीज) धनिये-
 के अभावमें सोया, वाराहीकन्दके अभावमें चमारआलु,
 और मुरहरीके अभावमें भिङ्गीनी वृक्षका वक्कल ग्रहण करे
 ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १०१ ॥

अभावात्पौष्करेमूलैकुष्ठं सर्वत्र गृह्यते ।

सामुद्रं सैन्धवाभावे विडम्बा गृह्यते बुधैः ॥ १०२ ॥

कुस्तुम्बुरुनविद्येत यत्र तत्र च धान्यकम् ।

पुष्पाभावे फलं चामं विड्भेदे विल्वतः फलम् ॥ १०३ ॥

यष्ट्या ह्वाभावतो विद्याच्च व्यंत स्याप्यभावतः ।

मूलं मौपलिकं देयमभावे कुटजस्य च ॥ १०४ ॥

रास्नाभावे च वन्दाकं जीराभावे च धान्यकम् ।

तुम्बुरुणा मभावेऽपि शालिधान्यं प्रकीर्तितम् ॥ १०५ ॥

पुष्करमूलके अभावमें सब जगह कूट ग्रहण करे, सैन्धानी-
 नके अभावमें समन्दरनोन, कुस्तुम्बरु (गीलाधनियां कच्चा
 धनियां) के अभावमें धनिया, पुष्पके अभावमें कच्चाफल और
 मलका भेद होनेपर विल्वफल ग्रहण करे । मूलहठीके अभावमें
 चव, कुडाके अभावमें सुसलीकी जड़, रास्नाके अभावमें
 वन्दा (वृक्षके ऊपर वृक्ष) जीराके अभावमें धनिया और तुम्बरुके
 अभावमें शालिधान्य ग्रहण करे ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

भल्लातका सहत्वे तुरक्तचन्दनमिष्यते ।

भल्लाताभावतश्चित्रं नलश्चेशोरभावतः ।

मद्याभावे चाशिण्डाकी शुक्तयभावे च काञ्जिकम् १०॥

भिलाषेके अभावमें चित्रक, या लालचन्दन, गन्नेके अभा-

चमे नल, मद्यके अभावमें शिण्डाकी (सन्धान-भेद) और तेज-
शरावके अभावमें कांजी ग्रहण करे ॥ १०६ ॥

चित्रकाभावतोदन्तीक्षारःशिखरिजोऽथवा ॥

अभावेधन्वयासत्यप्रक्षेप्यातुदुरालभा ॥ १०७ ॥

अहिंसायाअभावेतुमानकन्दःप्रकीर्तितः ॥

लक्षणायाअभावेतुनीलकण्ठशिखामतां ॥ १०८ ॥

बितोके अभावमें दन्तीमूल अथवा चिरचिटेका क्षार,
जवासेके अभावमें दुरालभा (जवासा), अहिंसा (कण्टकपाली)
के अभावमें मानकन्द (मालकन्द), श्वेतकटेरीके अभावमें
मयूरपुच्छ ग्रहणकरे ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

वकुलभावतोदियंकहारोत्पलपंकजम् ।

नीलोत्पलत्याभावेतुकुमुदंदेयमिष्यते ॥ १०९ ॥

जातीपुष्पंनयत्रास्तिलवज्रंतत्रदीयते ।

अर्कपर्णादिपयसोह्यभावेतद्रसोमतः ॥ ११० ॥

पौष्कराभावतःकुष्ठंतथालाङ्गल्यभावतः ।

स्थौण्येयकस्याभावेतुभिपग्भिर्दायतेगदः ॥ १११ ॥

वकुलके अभावमें कल्हार, उत्पल और पद्म ग्रहण करे ।
नीलोत्पलके अभावमें ववूला, चमेली फूलके अभावमें लोंग,
आगादिका दूध नहो तो तिनके पत्रोंका रस ग्रहण करले ।
पुष्करमूलके अभावमें कूट, वाकुचीके अभावमें ककरोदाका
फल, लाङ्गली (फरिहारीकाविष) और गंडीलेके अभावमेंभी
वैद्यलोग कूटका व्यवहार करा करते हैं ॥ १०९ ॥ ११० ॥ १११ ॥

कुंकुमाभावतोदद्यात्कुसुम्भकुसुमंनवम् । (द्विपाठः)

श्रीखण्डचन्दनाभावे कर्पूरदेयमिष्येत ॥ ११२ ॥

अभावेत्वेतयोर्वैद्यःप्रक्षिपेद्रक्तचन्दनम् ।

रक्तचन्दनकाभावेनवोशीरंविदुर्वुधाः ॥ ११३ ॥

मुस्ताचातिविपाभावेशिवाभावेशिवामता ।

अभावेनागपुष्पस्यपद्मकेशरमिष्यते ॥ ११४ ॥

मेदाजीवककाकोलीऋद्धिद्वन्द्वेऽपिवासति ।

वरीविदार्य्यश्वगंधावाराहीच क्रमात्क्षिपेत् (११५)

कुंकुमके अभावमें कसूमके नये फूल और श्रीखण्डचन्दनके अभावमें कपूरके देनेका विधानहै । यह दोनों नहीं तो वैद्य लालचन्दनका प्रयोगकरे । लालचन्दन नहो तो वैद्योंको चाहिये कि खसैको ग्रहण करे । अतीसके अभावमें नागरमोया, हरके अभावमें आमला, और नागकेशरके अभावमें पद्मकेशरका व्यवहार करना चाहिये । मेदा, जीवक, काकोली, ऋद्धि और वृद्धि इनके अभावमें क्रमानुसार शतावरी, विदारीकंद, अस-गंध, और वाराहीकन्दका प्रयोगकरे । अर्थात् मेदके अभावमें शतावरी, जीवकके अभावमें विदारीकन्द, काकोलीके अभावमें असगंध और ऋद्धि वृद्धिके अभावमें वाराहीकन्द (चमार-भालू) ग्रहणकरे ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

१ वाराहीकन्दसंज्ञन्तुपश्चिमेश्वरसंज्ञकः ।

वाराहीकन्दएवान्यैश्चर्मकारालुफोमतः ॥

अनूपसम्भवेदेशेवराहइवलोमवान् ॥ भावप्रकाशे ।

अर्थात् पश्चिमदेशमें वाराहीकन्दको गेंटी कहते हैं, पूर्वकी ओर चमारभालूक नामसे प्रसिद्धहै । यह आनुष (जलीय) देशमें जन्म-ताहै शूकरकेसे रोम इसपर होतेहैं ।

सुवर्णाभावतःस्वर्णमाक्षिकंप्राक्षिपेद्बुधः ।

श्वेतंतुमाक्षिकंज्ञेयंबुधैरजतवद्भुवम् ॥ ११६ ॥

माक्षिकस्याप्यभावेतुप्रदद्यात्स्वर्णगैरिकम् ।

सुवर्णमथवारौप्यंमृतंयत्रनलभ्यते ॥ ११७ ॥

तत्रकान्तेनकर्म्माणिभिपक्षुर्याद्विचक्षणः ।

कान्ताभावेतीक्ष्णलौहंयोजयेद्वैद्यसत्तमः ॥ ११८ ॥

मत्स्यण्डाभावतोदद्युर्भिषजःसितशर्कराम् ।

असम्भवेसितायास्तुबुधैःखण्डंप्रयुज्यते ॥ ११९ ॥

सुवर्णके अभावमें सोनामक्खी, चांदीके अभावमें रूपा-
माक्खी-स्वर्णमाक्खीके अभावमें पीलागेहू प्रयोगकरे । भस्म
किये सुवर्ण, अथवा चांदीके अभावमें चतुर वैद्यको चाहिये कि
कान्तिसार लोहेसे कार्य पूराकरे । कान्त लौह न मिले तो
इस्पातकी भस्मका प्रयोग करना ठीकहै । मिट्टीके अभावमें
श्वेत शर्करा और चीनीके अभावमें खांडका प्रयोग करना
ठीकहै ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

अन्यान्तरे ।

सुवर्णमथवारौप्यंयोगेयत्रनलभ्यते ।

तत्रलौहेनकर्म्माणिभिपक्षुर्याद्विचक्षणः ॥ १२० ॥

भस्म किये हुए सुवर्ण या भस्मकी हुई चांदीका अभावहो, तो
चतुर वैद्यको चाहिये कि वहांपर जारित लौहका प्रयोगकरे १२०

रसाञ्जनस्याभावेतुसम्यग्दार्वाप्रियुज्यते ।

सौराष्ट्र्यभावतो देयास्फटिका तद्गुणा जनैः ॥ १२१ ॥

१ ' सौराष्ट्री ' सौराष्ट्र माद्य इतिलोके ।

२ ' स्फटिका ' फटकिरी ।

तालीशपत्रकाभावेस्वर्णतालीप्रशस्यते ।

भांग्यभावेतुतालीशंकण्टकारीजटाथवा ॥ १२२ ॥

रुचकाभावतोदद्याल्लवणं पांशुपूर्वकम् ॥

अभावेमधुयष्ट्यास्तुधातकीञ्चप्रयोजयेत् ॥ १२३ ॥

रसौत नमिले तो तहाँ दार्वीकाय (दारूहलदीका काथ) प्रयोगकरे । गोपीचंदन न मिले तो तिसके गुणसे युक्त फद-किरी ग्रहणकरे । तालीशपत्रके अभावमें स्वर्णताली, भेष्टहै । भारंगीके अभावमें तालीशपत्र अथवा कटेरीकी जड़ ग्रहणकरे चौहारके अभावमें पांगानोन और सुलहदीका अभाव होने-सै धातकीपुष्प (धायफूल) का प्रयोग करना चाहिये ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

अम्लवेतसकाभावेचुक्रंदातव्यामिष्यते ।

द्राक्षायदिनलभ्येतप्रदेयंकामरीफलम् ॥ १२४ ॥

तयोरभावेकुसुमं बन्धूकस्यमतंबुधैः ।

लवङ्गकुसुमं देयं नखस्याभावतः पुनः ॥ १२५ ॥

कस्तूर्यभावेकक्कोलं क्षेपणीयं विदुर्बुधाः ।

कक्कोलस्याप्यभावेतुजातीपुष्पं प्रदीयते ॥ १२६ ॥

सुगन्धिमुस्तकं देयं कर्पूराभावतो बुधैः ।

कर्पूराभावतो देयं ग्रान्थिपर्णं विशेषतः ॥ १२७ ॥

अमलवेतके अभावमें चूका, दाखके अभावमें गाम्भारी-

(१) " रुचकं " चौहार ।

(२) " पांशुलवण " खारी अथवा ' रेह ' इति लोके ।

(३) कस्तूरीनामभावेतु द्राक्षागन्धशटी बुधैः । इति पाठान्तरम् ।
अर्थात् कस्तूरीके अभावमें धँबिया दलदीले ॥

फल, गाम्भारीफूलके अभावमें दुपहरियाका फूल पंडितलोग व्यवहार करतेहैं । नस्तीके अभावमें लोंगेके फूल, कस्तूरीके (३) अभावमें काँकोली और तिसके अभावमें चमेलीके फूल दिये जातेहैं । कपूरके अभावमें गठीवन अच्छाहै । परन्तु कभी २ पंडितलोग सुगन्धित नागरमोयेकाभी व्यवहार करतेहैं ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

यदिनस्यादारुनिशातदादेयानिशाबुधैः ।

अभावेकोकिलाक्षस्यगौक्षुरंबीजमिष्यते ॥ १२८ ॥

अन्तःसम्मार्जनेज्ञेयाह्यजमोदायमानिका ।

बाहिःसम्मार्जनेसैवविज्ञातव्याजमोदिका ॥ १२९ ॥

दारुहलदीके अभावमें पंडितलोग हलदीका व्यवहार करतेहैं । तालमखानेके अभावमें गोखरूके बीजोंको ग्रहण करतेहैं खानेकी औषधिके विधानमें अजमोद शब्दके स्थलमें यवानी (अजवायन) और बाहरं लेपादिमें अजमोद शब्दसे दम्रगन्धा (वच) को ग्रहणकरे ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

यत्रयद्रव्यमप्राप्तभेपजेपरपूर्वतः ।

ग्राह्यंतद्गुणसाम्यात्तुनतत्रकापिदूषणम् ॥ १३० ॥

किसी औषधिमें तेल या घृतादिमें यदि किसी द्रव्यका अभावहो, तो इस न प्राप्तदुष्ट द्रव्यके (गणके) पहलेकी, या पीछली औषधि ग्रहणकरे । चतुर वैद्य इस न प्राप्तदुष्ट द्रव्यकी समानगुणवाली औषधिका प्रयोगकरे ॥ १३० ॥

अन्यानियानीहरसायनादौयोगेचवस्तूनिचकीर्तितानि
तेषामलाभेनचवृद्धवैद्यप्रसिद्धितस्तानिहरन्तिवैद्याः ॥

परन्तु रसायनादिमें जिन औषधियोंका वर्णनहै, उन औ-

पधियोंके अभावमें वृद्ध वैद्योंके उपदेशानुसार जैसा प्रचलित है, वैसा ग्रहण करे ॥ १३१ ॥

अत्र प्रोक्तानि वस्तूनि यानि तेषु च तेषु च ।
 योज्यमेकतराभावेऽपरं वैद्येन जानता ॥ १३२ ॥
 रसवीर्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिन्त्य च ।
 युजात्तद्विधमन्यच्च द्रव्यणां तुरसादिवित् ॥ १३३ ॥
 योगेयदप्रधानं स्यात्तस्य प्रातिनिधिर्ममतः ।
 यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं नैव गृह्यते ॥ १३४ ॥
 व्याधेरयुक्तं यद्रव्यं गणोक्तमपि तस्य जेतु ।
 अनुक्तमपि युक्तं यद्योजयेत्तद्रसादिवित् ॥ १३५ ॥

यहाँ पर जिस २ वस्तुके बदले जिस २ वस्तुके प्रयोग करनेका वर्णन हुआ, उन २ वस्तुओंकाभी अभाव होतो उनकी समान और वस्तुओंकाभी व्यवहार होसकताहै । रस-वीर्य, विपाकादिमें ज्ञानी वैद्य विचारके साथ द्रव्यका रस, वीर्य विपाकादिमें समता निरूपण करके तुल्यरसादि गुण युक्त और द्रव्यभी प्रयोगकरे । परन्तु औषधिके गणमें अनेक औषधियोंकी समष्टिकरनेसे जो कोई द्रव्य मुख्यहो, उसके बदलेमें बराबर गुणवाली औषधि न ग्रहणकरके, जो द्रव्य प्रधान (मुख्य) नहीं है उसकी समान गुणवाला द्रव्य ग्रहण करे । रस वीर्यादिके जाननेवाले चिकित्सकको चाहिये कि, रोगके अयोग्य औषधिगणमें कहीहो तोभी, उसका त्यागकरे और रोगके योग्य औषधिगणमें न कही हो तोभी विचार करके उसको, प्रयोगकरे ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

अथ द्वितीयखण्डः ।



पंचविधकपायमाह ।

स्वोरसःस्वरसःप्रोक्तःकल्कोदपदिपोपितः ।

क्वाथितस्तुशृतःशीतःशर्वरीमुपितोमतः ॥ १ ॥

क्षितोष्णतोये मृदितःफाण्ट इत्याभिधीयते ।

पंचैताश्चसमुद्दिष्टाःकपायाणांप्रकल्पनाः ।

गुरवःस्युर्यथापूर्वलघवःस्युर्यथोत्तरम् ॥ २ ॥

कपाय पांच प्रकारकी है यथा,—स्वरस, कल्क, क्वाथ, शीत और फाण्ट । तिनमें कच्चे द्रव्यको बिना जलके कूटकर मलके रस ग्रहण करनेसे तिसको स्वरस कहते हैं, पत्थपर पीस लैनेसे तिसको कल्क कहतेहैं, द्रव्य कूटकर जलद्वारा पाक करलेनेसे तिसको क्वाथ, और पहले दिन जलमें भिजोकर दूसरे दिन छान लेनेसे तिसको शीत, और कूटा हुआ द्रव्य गरम जलमें भिजोकर छान लैनेसे तिसको फाण्ट कहतेहैं । इन पांच प्रकारकी कपायमें पूर्वानुक्रमसे भारी और क्रमानुसार उत्तर ये लघुहैं, अर्थात् कल्कसे स्वरसभारी हैं, स्वरससे कल्क लघुहै इत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥

विश्वामित्रेण शीतफाण्टयोर्लक्षणमुक्तम् ।

तद्यथा ।

पाद्भिःपलैश्चतुर्भिर्वासलिलाच्छीतफाण्टयोः ।

आहुतंभेषजपलंरसाख्यायांपलद्वयम् ॥ ३ ॥

शीत और फाण्ट बनाना हो तो छयपल (४८ तोला) अथवा ४ पल (३२) तोला जलमें । एक पल (८ तोला)

औषधि भिगोरक्खै, परंतु स्वरसके बदले तिसका व्यवहार करना हो तो इस जलमें २ पल (१६ तोल) औषधि भिगोना ठीक है ॥ ४ ॥

स्वरसमाह ।

सद्यःक्षुण्णाद्रद्रव्यस्यवस्त्रयन्त्रादिपीडनात् ।

योरसस्त्वभिनिर्यातिस्वरसःसंप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

शुष्कद्रव्यमुपादायस्वरसानामसम्भवे ।

वारिण्यष्टगुणेषाध्यग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ ५ ॥

सद्य आर्द्र (ताजा रससे युक्त) द्रव्य ग्रहण करके तत्काल कूटकर वस्त्र या यंत्रादि करके मलने पर उसमेंसे जो रस निकले, तिसको स्वरस करते हैं । यदि किसी द्रव्यका स्वरसको अभाव हो अर्थात् गोला द्रव्य यदि न पाया जाय तो वही सुखा द्रव्य आठगुणे जलमें पकावै । जब चौथाई रहै तो उताकर तिसको ग्रहण करे ॥ ४ ॥ ५ ॥

अन्यच्च ।

आहृतात्तत्क्षणाकृष्टात्क्षुण्णाद्रव्यात्समुद्धरेत् ।

वस्त्रनिष्पीडितोयस्तुस्वरसोरसउच्यते ॥ ६ ॥

कुडवंचूर्णितंद्रव्याक्षिप्तंतद्विगुणेजले ।

अहोरात्रंस्थितंतस्माद्भवेद्भारंसउत्तमः ॥ ७ ॥

द्रव्यको लाकर तत्काल तिसको कूटै और कपड़ेसे अमेठकर तिसके निचोड़नेसे जो रस पाया जाता है तिसको स्वरस कहते हैं, अथवा सुखा हुआ आधसे र द्रव्य चूर्णकर एकसे र जलमें एक दिन एक रात तक भिजोकर छानलिया जाय, तो उसका भी व्यवहार स्वरसके बदले किया जाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

अन्यच्च ।

आदायशुष्कद्रव्यं वास्वरसानामसम्भवे ।

जलेष्टगुणिते साध्यं पादशिष्टन्तु गृह्यते ॥ ८ ॥

सूखे द्रव्यका स्वरस नहीं पाया जाता, इसकारण सूखे द्रव्यको आठगुने जलमें पकावै, जब चौथाई रहे तब उतारकर स्वरसके बदले ग्रहण करे ॥ ८ ॥

अस्य पानमात्रमाह ।

स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्द्धं प्रयोजयेत् ।

निःशेषितश्चापि सिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत् ॥ ९ ॥

स्वरस पाकमें भारी है, इसकारण अर्द्धपल (४ तोला) की मात्रा करके इसको पान करे । पहली कही हुई रीतिसे सूखे द्रव्यको कूटकर जलमें पकानेसे जो रस पाया जाता है, वह सबकी बनिस्वत पाकमें हलका है । वस वह १ पल (८) तोला-की मात्रासे इसका प्रयोग किया जा सकता है ॥ ९ ॥

स्वरसभेदाष्टपुटपाकाविधिमाह ।

पुटेपक्वस्य द्रव्यस्य स्वरसो गृह्यते यतः ।

अतोऽयं पुटपाकः स्याद्विधानंतस्य कथ्यते ॥ १० ॥

द्रव्यमापोत्थितं जम्बुवटपत्रादिसम्पुटे ।

वेष्टयित्वा ततो बद्ध्वा दृढं रज्ज्वादिना तथा ॥ ११ ॥

मृलेपं द्वङ्गुलं कुर्यादथ बाहुलिमात्रकम् ।

दहेत्पुटान्तरादग्नौ यावलेपस्य रक्तता ॥ १२ ॥

पुटपाककरके किस २ द्रव्यका स्वरस ग्रहण किया जाता है इसका अतएव पुटपाकका नियम कहते हैं । पाटियोंमें कूटा हुआ द्रव्य जामनके और चडके पत्ते आदिसे लपेट-

कर रस्सीसे भली भाँति बांधकर गोबर मिलीहुई मिट्टीसे दो अंगुल या एक अंगुलका मोटा लेपदेकर पुटकी आगमें दग्ध करताहै । जब यह लेप लाल रंगकाहो जाय तब पाकको सिद्ध हुआ जानकर उतारले ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

अन्यञ्च ।

पुटपक्कस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः ।

अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ॥ १३ ॥

पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्यारुणवर्णता ।

लेपश्च द्रव्यद्रुलं स्थूलं कुर्याद्वा द्रुलिमात्रकम् ॥ १४ ॥

पुटमें पके हुए कल्कका स्वरस ग्रहण करना आवश्यक होताहै इससे पुटपाककी विधिका वर्णन करते हैं । घड़ियाके लेपका रंग वैसे ही लाल होजाय । वैसेही पुटपाकको सिद्ध हुआ जानकर तत्काल अग्निसे निकालले । इस घड़ियामें मट्टीका लेप २ अंगुल या १ अंगुल मोटाहो ॥ १३ ॥ १४ ॥

कल्कमाह ।

द्रव्यमात्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा जलमिश्रितम् ।

तदेव सूरभिः पूर्वं कल्क इत्यभिधीयते ॥

आवापस्त्वथ प्रक्षेपस्तस्य पर्याय उच्यते ॥ १५ ॥

सूखा या जलयुक्त द्रव्य शिलापर पीस लिया जाय तो इसको कल्क कहते हैं । ऐसा आगुर्वंदके आचार्य मुनियोंने कहाहै । आवाप और प्रक्षेप कल्कके एक पर्यायक शब्द हैं ॥ १५ ॥

कल्करूपेण देवाचार्यमाह ।

अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ।

चूर्णतश्च रजःशोदस्तस्य पर्याय उच्यते ॥ १६ ॥

सूखा हुआ द्रव्य, भली भाँतिसे शिलापर पीसकर कपड-
छान कियाजाय तो इसे चूर्ण कहतेहैं । रज और क्षौद्र इसके
पर्यायहैं ॥ १६ ॥

अन्यत्र ।

द्रव्यमात्रंशिलापिष्टंशुष्कंवासजलंभवेत् ।

प्रक्षेपावापकल्कास्तेतन्मानं कर्पसम्मितम् ॥ १७ ॥

कल्केमधुघृतंतैलंदेयांद्विगुणमात्रया ।

सितांगुडंसमंदद्याद्रवादेयाचतुर्गुणाः ॥ १८ ॥

सूखा अथवा कच्चा द्रव्य शिलापर पीसलेनेसे तिसको प्रक्षेप,
आवाप और कल्क कहतेहैं । इसका परिमाण एककर्प
(२ तोला) है । कल्कमें शहरत, घी, और तेलका प्रक्षेप देना
होतो कल्कसे दुगनाले, चीनी और गुड़कल्ककी बराबरले
और द्रव (तरलद्रव्य दूध जलादि) द्रव्य, कल्कसे चौगु-
नाले ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथक्वाथमाहशाङ्गधरः ।

पानीयंपोडशगुणंशुष्णेद्रव्यपलेक्षिपेत् ।

मृत्पात्रेक्वाथयेद्ग्राह्यमष्टमांशावशोपितम् ॥ १९ ॥

तजलंपाययेद्धीमान्कोष्णं मृद्रग्निसाधितम् ।

शृतक्वाथकपायश्चानिर्य्यूहःसनिगद्यते ॥ २० ॥

आहाररसपाकेचसज्जातोद्विपलोन्यितम् ।

वृद्धवेद्योपदेशेनपिवेत्क्वाथंसुपाचितम् ॥ २१ ॥

क्वाथेक्षिपेत्सितामंशैश्चतुरष्टकपोडशैः ।

वातपित्तकफातङ्गविपरीतंमधुस्मृतम् ॥ २२ ॥

एक पलद्रव्य (८ ला) को कूट १६ गुणे जलमें मिलाय

मिट्टीके पात्रमें औटावै, जब आठवां भाग जलते रहजाय तो उतारकर छानले । इसको काथ कहते हैं। इस काथको थोड़ासा गरम रहतेही पीजाय । शृत, काथ कपाय, और निर्यूह यह कई एक इसके पर्याय हैं । जब खाया हुआ अन्न पचजाय तो दोपल (१६ तोला) इस काथको पानकरनेकी विधि है। वायुसे उत्पन्न हुए रोगमें काथसे चौथाई चीनीमिलाय इसको पानकरे, पित्तसे उत्पन्न हुए रोगमें आठवें अंशका एक अंश और कफसे उत्पन्न हुए रोगमें १६ वां अंश चीनीका मिलाकर इसको सेवन करे । परन्तु काथमें मधुका प्रक्षेप देना हो तो उससे विपरीत अर्थात् वायुके कोषमें काथके सोलहवें हिस्सेका एक हिस्सा, पित्तके कोषमें आठवें अंशका एक अंश, कफके कोषमें चार अंशका एक अंश शहद डालकर पानकरे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

अन्यञ्च ।

द्रव्यादापोत्थितात्तोयेर्वह्निनापरिपाचितात् ।

निःसृतोयोरसःपूतःसशृतःसमुदाहृतः ॥

काथःकपायोनिर्यूहःपर्यायस्तस्यकीर्तितः ॥ २३ ॥

कूटाहुआ द्रव्य जल मिलाय अग्निमें पकावै फिर कपड़ेमें मसलकर उसको छानले, छानेसे जो रस निकलता है तिसको शृत कहते हैं । काथ, कपाय और निर्यूह इसके पर्याय हैं ॥ २६ ॥

शीतमाह ।

क्षुण्णद्रव्यपलंसम्यक्पङ्क्तिभिर्जलपलेःप्लुतम् ।

शर्वरीमुपितंसम्यग्ज्ञेयःशीतकपायकः ॥ २४ ॥

एकपल (८ तोला) द्रव्य कूटकर छयपल (४२ तोला) जलमें एकराततक भिगोरवखै, इसको शीत कहते हैं ॥ २४ ॥

अवान्तरभेदात्तण्डुलोदकमाह ।

तण्डुलान्कणशःकृत्वापलंग्राह्यंहितण्डुलात् ।

चतुर्गुणंजलंदेयंतण्डुलोदककर्मणि ॥ २५ ॥

एकपल (८ तोला) सुखेड्डण चावल भलीभांतिसे कूटकर चौगुने जलमें एकादिन या एक राततक भिजो रखै फिर छानले, इसको तण्डुलोदक कहतेहैं ॥ २५ ॥

अन्येप्याहुः ।

शीतकपायमानेनतण्डुलोदककल्पना ॥ २६ ॥

कोई २ कहतेहैं शीतकपाय जिस परिमाणसे प्रयोग किया जाताहै तण्डुलोदकका प्रयोगभी इसी परिमाणसे करना चाहिये ॥ २६ ॥

फाण्टमाह ।

क्षुण्णद्रव्यपलेसम्यग्जलमुष्णंविनिक्षिपेत् ॥

पात्रेचतुष्पलमितंततस्तुस्नाषयेज्जलम् ।

सोऽथंपूतोद्रवःफाण्टोभिषग्भिरभिधीयते ॥ २७ ॥

एकपल द्रव्य कूटकर मिट्टीके पात्रमें चौगुने गरम जलके साथ भिगोरखै, इसको फाण्ट कहतेहैं ॥ २७ ॥

प्रसंगादुष्णोदकमाह ।

अष्टमांशावशेषेणचतुर्थेनार्द्धकेनवा ।

अथषाक्काथनेनैवसिद्धमुष्णोदकंवदेत् ॥ २८ ॥

जल अग्निके तापसे औटाकर अष्टमांश चतुर्थांश अथवा अर्द्धांश बचनेपर उतारले या थोडासाही सिद्ध करले, इसको उष्णोदक कहते हैं ॥ २८ ॥

काथादेरवान्तरभेदाह्नेहादिकमाह ।

काथादेर्यापुनःपाकादनत्वंसारसक्रिया ।

अवलेहश्चलेहश्चप्राशइत्युच्यतेबुधैः ॥ २९ ॥

“मात्रास्यात्तत्पलोन्मिताइत्यपिपाठः”

काथादिको दुबारा अधिक तापसे पाककरके बना किया जाय तो इरुको अवलेह कहते हैं । पंडित लोग इसको लेह और प्राश कहा कहते हैं ॥ २९ ॥

वटकोमोदकःपिण्डीगुडोवर्त्तिस्तथावटी ।

वटिकागुटिकाचेतिसंज्ञावान्तरभेदतः ॥ ३० ॥

मात्राच्छायातपच्छेदवासविश्लेषपेषणैः ।

मन्थपीडनसंयोगजलकालबलावलैः ॥ ३१ ॥

द्रव्यगुणान्तराधानंविशिष्टंक्रियतेयतः ।

तेनमोदकचूर्णादिवटकाश्चयथाश्रुति ॥ ३२ ॥

वट्टी, लहू, पिण्डी, गुड, वर्त्ती, लम्बीमाली, गोली और गुटिका यह एक पर्यायक शब्द हैं । मात्रा, छाया, जातप, छेदन, वास, विश्लेष, पेषण, मन्थन, पीडन, संयोग, जल, काल और बलावल विशेषसे द्रव्यका गुणभी विविधप्रकारका होता है । मोदक, चूर्ण और वटिकादिवा जिसका जैसा गुण प्रसिद्ध है, तिसका तैसा गुण जानना ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

द्रव्याणामत्राविधिर्लिखते ।

स्थितिर्नास्त्येवमात्रायाःकालमग्निंवलंबयः
प्रकृतिदेशदोषौचदृष्ट्वा मात्रांप्रकल्पयेत् ३३॥
यतोमन्दानलोह्रस्वाहीनसत्त्वानराःकलौ ।
अतस्तुमात्रातद्योग्याप्रोच्यते शुद्धसम्भता ३४

औषधि देनेकी मात्राका कोई नियम नियत नहीं है । काल, अग्नि, बल, उमर, स्वभाव, देश और वातादि दोषके देखनेसे चिकित्सक विचार करके औषधिकी मात्राको कल्पितकरे (निर्धारित नियमकी बनिंसवत औषधीकी मात्रा कन या ज्यादा हो तो रोग दूर नहीं होता, वरन् अनेक विघ्नोंके होनेकी सम्भावना है) क्योंकि कलिकालमें मनुष्य मन्दाम्रियुक्त, क्षुद्राकार, और सत्त्वगुणहीन होंगे; अतएव तिसके अनुसार विचारकरके औषधिकी मात्राका प्रयोग करना ठीक है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अन्यप्रकारः ।

नाल्पहन्तयौषधंव्याधियथाल्पाम्बुगहानलम् ।
दोषवञ्चातिमात्रंस्याच्छस्यमृत्पुदकंयथा ॥ ३५ ॥

जिसप्रकार अत्यन्त प्रज्वलित अग्निके ऊपर थोड़ासा जल डालनेसे वह अग्नि नहीं बूझती; तैसेही बड़े रोगमें अल्प मात्राकी औषधिका प्रयोग करनेसे रोग दूर नहीं होता; और खेतमें अधिक जल बर्सेनेसे जैसे नाज नष्ट होता है; तैसेही साधारण रोगमें औषधिकी अधिक मात्रा प्रयोग करनेसेभी रोगीका नाश होता है ॥ ३५ ॥

अन्यच्च ।

मात्रयाहीनयाद्रव्यं विकारं न निवर्त्तयेत् ॥

द्रव्याणामतिबाहुल्याद्वापत्संजायते ध्रुवम् ॥ ३६ ॥

मात्राहीन (मात्राके अनुसार मात्रा पूरी नहो थोड़ीहो तो)
द्रव्यसे रोगको आराम नहीं होता और मात्राकी अधिकाई
होनेसे निश्चय विपत्ति पडतीहै ॥ ३६ ॥

अन्यच्च ।

मात्रयानास्त्यवस्थानंदोषमग्निबलं वयः ।

व्याधिद्रव्यञ्चकोष्ठञ्चवीक्ष्यमात्रां प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥

उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमे ।

जघनस्य पलाद्धेन स्नेहकाथ्यौपधेषु च ॥ ३८ ॥

औपधिकी मात्राका कोई नियत नियम नहींहै । दोष, अग्नि,
बल, उमर, रोग, औषध और कोष्ठ (कठन रहना) देखकर
विचारपूर्वक औपधिकी मात्राका प्रयोग करे । स्नेह और काथ्य
औषध प्रबलामियुक्त मनुष्योंके लिये ८ तोला, मध्यम
अग्निवालोंके लिये ६ तोला और हीनअग्निवालोंके
लिये ४ तोलका परिमाण प्रयोग करना उचितहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

१ उत्तमस्य प्रबलामिबलपुरुषस्य, न पुनर्युगविशेषजातस्य पुरुषस्य
क्षिप्तां पलावेयं शास्त्रप्रचारात्तात्पर्ययुगादी व्याप्यभावात् । उत्तमादिश-
ब्दानां युगादीनामनभिधानाच्च पलमत्रसोभुतमिति श्रुत्यः । चरकाद्धं
पलं न्मानं चरकः दशरत्नयोरिति सौभुतपलं चरकाद्धं पलम् । त्रिभि-
रसोरिति चरकस्य त्रिभिस्तोलेः । पलाद्धेनेति चरकः कर्षकेन युगप्रभा-
गात्तपस्या एव सर्वं भतप्य उपन्यासात्वा सर्वेषां दातव्या । किन्तु
“सर्वेषु युगात् पलाद्धेन सुदिकानाश्च सर्वज्ञः” इति उपन्यासात्तपस्या
शब्दोत्पत्तेन शब्दप्रदे निमित्तमिति दिष्टम् । काप्यमित्यपेक्षार्थं यत् ।
काप्यमिति काप्यंतेषु स्नेहकाथ्यौपधेषु भवया काप्यौपधेषु धेति
काप्यमिति वै । स्नेहकाथ्यौपधेषु । भतग्नानि शीतानि भक्षण-
यानि । भक्षोभक्षणमांशेति श्रुत्यः प्राहुः ॥

साद्वैपलंपलञ्चाद्वैविद्व्याहुडखण्डयोः ।

श्रेष्ठमध्यमहीनेपुमात्रेयमुनिभिःकृता ॥ ३९ ॥

प्रबलअमिवालोंके लिये १॥ पल (१२ तोला) मध्यम
अमिवालोंके लिये एकपल (८ तोला) और हीनअमिवालोंके
लिये आधापल (४ तोला) औषधिकी मात्रा प्रयोग करना
उचितहै ॥ ३९ ॥

अत्रत्यात्सौश्रुतंपञ्चरक्तिमासात्मकंपलम् ।

मोदकंवटकंलेहंकर्पमात्रंप्रयोजयेत् ॥

कर्पद्वयंपलंवापिदेयंकोष्ठाग्न्यपेक्षया ॥ ४० ॥

यहां सुश्रुतमें कहेहुए पांच रक्तीका मासा, इसमानसे पलग्र-
हण करे. मोदक, वटक और अवलेहादिकी मात्रा एक कर्प
(२ तोला) रखे । परन्तु कोष्ठ और अमिका बलाबल
विचारकर दो कर्प अथवा १ पल (८ तोला) तककी मात्राभी
प्रयोगकीजासकती है ॥ ४० ॥

अर्थात् सप्त, त्रेता और द्वापरयुगमें समस्तजीव रोगहीनथे । वैद्यक
ग्रंथ और समस्त औषधियें रोग दापत्र होनेके पीछे संग्रह हुंहे। (इसका
विस्तार चरक, सुश्रुत और भावप्रकाशादि ग्रंथोंमें देखो) इसकारण क-
लिकाळमें समस्तजीव तेजहीन और व्याधिग्रस्त हुए हैं; अतएव युगके
प्रभावसे औषधिकी हीनमात्राकाही प्रयोग करना चाहिये । ऊपर नि-
सस्यमानमें पल कहाहै, सो शुरुके उपदेशानुसारही सुश्रुतोक्त मानमें
ग्रहणकरना । क्योंकि चरकके मतसे मासा द्वासरक्तीकाहै, सुश्रुतके मतसे
मासा पांच रक्तीकाहै, यस्. चरकके आधे पलमें सुश्रुतका एकपल होता
है । अक्रद्गन्धभी अपने संग्रहग्रंथमें चूर्ण, कन्क और गुड़िकादि-
के सम्बन्धमें ऐसीही जघन्यमात्रा (हीनमात्रा) प्रयोगकरनेकी विधि
लिखीहै । अतएव औषधादिकी मात्रा शुरुके उपदेशानुसार कहिये
करके प्रयोगकरे ॥

श्रेष्ठमध्यमहीनेषु द्वादशाष्टचतुष्टयैः ।

मापकैर्गुग्गुलोर्मात्रांकोष्ठवीक्ष्यावतारयेत् ॥ ४१ ॥

प्रचल अग्निवालोंके लिये १२ मापा, मध्यम अग्निवालोंके लिये ८ मापा और हीन अग्निवालोंके लिये ४ मापा गुग्गुल कोष्ठके अनुसार विचारकर देना चाहिये ॥ ४१ ॥

गुञ्जामात्रं रसं देवि हेमजीर्णं च भक्षयेत् ।

तारं त्रिगुञ्जकं प्रोक्तरावे जीर्णं द्विगुञ्जकम् ॥ ४२ ॥

लोहाभ्रनागवद्भानां सर्प रस्य शिलाजतोः ।

पङ्कगुञ्जाप्रतिमामात्रामलोपरसमापकम् ॥ ४३ ॥

कांस्यपित्तलयोर्मानं भक्षयेत्ताम्रजीर्णवत् ।

यवमात्रं विषं देवि गुञ्जामात्रं तु कुष्ठिने ॥ ४४ ॥

वज्रं यवद्वयमितं तालकं यवसप्तकम् ।

ततो बुद्ध्याभिपद्यता प्रायोमात्रेति कीर्तिता ॥ ४५ ॥

महादेवजीनें पार्वतीजीसे कहा कि, हे देवि ! पारा और सुवर्ण एक रत्ती, चांदी ३ रत्ती, तांबा दो रत्ती, और लोहा, अभ्रक, क्षीशा, रांग, खपडिया, शिलाजीत, छय रत्ती मात्रासे और लौह-भैल और उपरस, संयोजकरस यथा शिगरफादि एक माप परिमाणसे प्रयोग करे । कांसी और पातल तांबे की सामान दो रत्ती परिमाणमें, विष एक जो (परंतु कुष्ठ रोगवालेको एक रत्ती विषदे) हीरा दो जो और हरिताल सात जो मात्रासे बुद्धिमान् चिकित्सक गुण विचारकरके प्रयोग करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

कालिङ्गसौश्रुतं भानं पञ्चरत्तिकमानतः ।

दशरत्तिकमानं तु मागधं चरके रितम् ॥ ४६ ॥

तयोर्मागधमानन्तुप्रशंसन्तिभिपग्वराः ।

कार्लिङ्गशुद्धलौहादिद्रव्यस्यकल्पनेमतम् ॥४७॥

कपायोऽनुवासनादिद्रव्यादानेतुमागधम् ।

कार्लिगमान और शुद्धतोक्त मानमें पांच रत्तीका मापाहै । मागधमानमें दशरत्तीका मापा चरकमुनिने कहाहै । कार्लिगमान और मागधमान, इन दोनोंमें मागधमानही विक्रित्सकोंके निकट आदरेणायहैं । शुद्धलौहादिकी कल्पनाप्रयोगके सम्बन्धमें कार्लिगमान और कपाय व अनुवासनादिके द्रव्य ग्रहण सम्बन्धमें मागधमान श्रेष्ठहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

पाचनादौजलपरिमाणमाह ।

कर्पादौतुपल्यावद्द्यात्पोंडशिकंजलम् ।

ततस्तुकुडवयावत्तौयमष्टगुणंभवेत् ॥ ४८ ॥

चतुर्गुणमतश्चोर्द्ध्यावत्प्रस्थादिकंभवेत् ।

क्वाथ्यद्रव्यपलेकुर्यात्प्रस्थाद्धपादशोपितम् ॥४९॥

पाचनादि बनानेमें एक कर्पसे एक पलतक द्रव्यमें सोलह गुण जल ढालकर औटावै । एक पलसे ऊपरको कुडव (आधा सेर) तक द्रव्यका परिमाण हो तो आठगुणे जलसे पाककरे कुडवके ऊपर प्रस्थ (२ दोसेर) आदि पाचनके द्रव्यका परिमाण जितनाहों तिसके चौगुने जलसे पाककरे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

१ क्वाथ्यद्रव्यपलेइति । प्रचलान्निबलपुरुषापेक्षया क्वाथ्यद्रव्यस्य पलं ग्राह्यम् । तत्साधनार्थं प्रस्थाद्धजलं दत्त्वा पादावशिष्टं कार्यम् । प्रस्थाद्धत्वात् जलमष्टगुणं शरावद्धयं पादशेषेण पलचतुष्टयं ग्राह्यमित्यर्थः । अर्थात् प्रचलान्निबले पुरुषके लिये एक पल (८ तोला) पाचनके द्रव्यका परिमाण हो तिसमें २ सेर जल ढालकर औटावै । जय चौयाई रहे, तब डटारले ।

मृदौचतुर्गुणंदेयंकठिनेऽष्टगुणंभवेत् ।

कठिनात्कठिनंयच्चदद्यात्पोडशिकंजलम् ॥ ५० ॥

मृद्वादिद्रव्यसंघातेमानानुक्तौचिकित्सका ।

मध्यस्योभयभागित्वादिच्छन्त्यष्टगुणंजलम् ५१॥

पाचनका द्रव्य मृदु और कुडवका अधिक परिमाणहो तो चौगुणे जलसै पाककरे, कठिन होतो अष्टगुण और अत्यंत कठिन होतो १६ गुण जल डाले । जो पाचनमें मृदु कठिन और अत्यन्त कठिन द्रव्य मिलेहों तो आठ गुण जलसै पाक करे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

जलपरिमाणप्रसङ्गतःपाचनानां द्रव्यपरिमाणमाह ।

दशरत्तिकमानेनगृहीत्वातोलकद्वये ।

दत्त्वाम्भःपोडशगुणंग्राह्यंपादावशोपितम् ॥ ५२ ॥

इमांमात्रांप्रकुर्वन्तिभिपजःपाचनेषुच ।

दशरत्तीका जो मापा होताहै उसमानमें पाचनका द्रव्य १ तोला ग्रहण करके १६ गुण (१२ तोला) जलमें पकाकर चतुर्थांश (८ तोला) जब रह जाय तब उतारले । वैद्योंकी पाचनमें ऐसी मात्राका प्रयोग करना चाहिये ॥ ५२ ॥

यवाग्वदिसाधने जलभेषजयोः परिमाणमाह ।

क्वाथ्यद्रव्याञ्जलिक्षुण्णंस्त्रावयित्वाजलाढके ॥ ५३ ॥

१मृदादि इति आर्द्रद्रव्यम् आदिशब्दात् कठिनातिकाठिनयोर्ग्रहणम् । एतेषां मिलितानां द्रव्याणामनुक्तजलपरिमाणानां पाचनादिसाधन-
पिधौ जलपरिमाणं मध्यस्य मध्यस्थितस्य मृदतिकठिनयोः कठिनस्य जलपरिमाणं प्राक् यदुक्तम् अष्टगुणं तदेव दत्त्वा पक्तव्यम् । उभय-
भागित्वादिति उभयोर्मृदतिकठिनस्य जलपरिमाणं प्राग्यदुक्तम् । मध्य एव भागोक्तत्वादिति जलमष्टगुणमुचितमेव गुरवः ।

पादावशेषेतेनाथयवाग्वाद्युपकल्पयेत् ॥

यूपांश्चरसकांश्चैवकल्पेनानेनसाधयेत् ॥ ५४ ॥

अर्थ—आधसेर कायके द्रव्य लेकर भलीभांतिसे कूटे और सोलहगुणे जलमें पकावै, जब चारसेर वाकी रहजाय तो उतारले, फिर इसहीके साथ यवागू पाक करे । जूस और रसादिकी कल्पनामें भी ऐसाही नियम जानें ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

यदप्सुशृतशीतासुपडङ्गादिप्रयुज्यते ।

कर्पमात्रंततोद्रव्यंसाधयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ ५५ ॥

अर्द्धशृतंप्रयोक्तव्यंपानेपेयादिसंविधौ ॥ ५६ ॥

अर्थ—पडङ्ग जल बनानाहो, या कायसे मांड, पेया, यवागू, जूस और मांस—रस (यखनी) आदि सिद्ध करनाहो, उसमें जिन औषधियोंकी आवश्यकताहो, उन सबको बराबर भाग दोदो तोला ग्रहण करके चार सेर जलमें सिद्ध करे, जब (२ सेर) रहजाय तो उतार कर छानले, जब शीतलहो जाय तो उस जलको पीनेके अर्थ या मंड, पेयादि पाक करनेमें व्यवहार करे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

कल्कसाग्यां पेयामाह (केसरदीकाकारः) ।

कर्पाद्धैवाकणाशुण्ठ्योःकल्कद्रव्यस्यवापलम् ।

विनीयपाचयेद्युत्तयावारिप्रस्थेनचापरान् ॥ ५७ ॥

अर्थ—कल्कसे पेया बनानाहो तो पीपल और सोंठ व-

१ कर्पाद्धमित्यादि—कणा शुण्ठी च तयोर्मिलित्वा कर्पाद्धं गृहीत्वा कल्कद्रव्यस्य च तण्डुलादेः पलं विनीय, विनीयेति पाठे नीत्वा इत्ययः । विलीयेति पाठे कल्कीकृत्येत्यर्थः । वारिप्रस्थेनेति एकत्वमविवक्षितं अग्न्याद्यपेक्षाया अधिकेनेति यावत् । तेन प्रस्यद्धये जले साधयित्वा अर्द्धशृतं वारिप्रस्थेन युन्या किञ्चिन्न्यूनेन अधिकेन वा प्रबलाग्निपुरुषापेक्षाया इत्यापरान् कल्कसाग्यां यवागू पाचयेत् भुक्षिद्धां कुर्यादित्यर्थः । एवमन्यत्रापि पेयादिसाधने प्रबलाग्निपुरुषादौ युन्या प्रचुरतरं सलिलं कल्कद्रव्यं वा ग्राह्यम् ।

रावर ले मिली हुई १ तोला और कल्क द्रव्य (चावला-
दि) ८ तोला लेकर ४ सेर जलमें पकावै, जब आधा रह
जाय तो उतार कर छानले (यहांपर यह जानना आव-
श्यक है कि प्रवलाभि, समामि और अरुणामिवालोंके भे-
दानुसार कल्कके सिद्ध करनेके जलकी मात्राभी अलग
२ होती है । वस आवश्यकतानुसार जलके लिखे हुए प-
रिमाणकी अपेक्षा पेयादि साधनमें थोड़ा या बहुत (कम या
ज्यादा) जलका परिमाण दिया जा सकता है । चतुर वै-
द्योंको विचार कर जलकी मात्राको कल्पित करना
चाहिये) ॥ ५७ ॥

साधनक्रममाह ।

कणाशुण्ड्योः कर्पाईं गृहीत्वा काथ्यद्रव्यस्य पलञ्च
प्रस्थद्वयेऽम्भसि अर्द्धश्रुतीकृत्य वारिप्रस्थं वस्त्रेण च्छानयित्वा
नाप्तिसान्द्रां नातिस्वच्छां यवागुं साधयेत् (कणा
शुण्ड्योः प्रत्येकं कर्पाईं कृत्वा पृथग्योगोऽयमिति कश्चित् (
ननु यद्येवं भेषजं काथः सामान्याधिक्ये पतति तत् किमर्थं कर्प-
मात्रं "ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिकेऽम्भसि इति पडङ्गपरि-
भाषा" अत आह, पडङ्गपरिभाषायां प्राय इति प्राचुर्येण
प्रचुरस्थले पडङ्गपरिभाषैव पेयादिसम्भता पेयादिषु की-
र्त्तिता । पेयादिषु मन्यत इति यावत् । अयमर्थः प्रायेण पडङ्ग-
परिभाषैव व्यवहार इति पडङ्गपरिभाषोक्ता । प्रवलाभिषु-
रूपे तु बहुभक्तरि स्ताफतोयेन यवागूर्न सिद्ध्यति युतया
काथप्रावर्त्य फेक्षाकृष्ट्या पतितमिति सर्वमवदातम् । निश्चल-
कारेण तु पलमत्र सौक्ष्ण्यमित्यवधेयमिति व्याख्यातम् ।
अत्र नारायणदासेन व्याख्यातम् । कणाशुण्ड्योः कर्पाईं वे-
ति तीक्ष्णद्रव्योपलक्षणं कल्कद्रव्यस्य वा पलमिति, मृदु
द्रव्योपलक्षणं मृदुफटिनयोर्युतया कर्पंदयमिति अपरा-

निति ये यवाग्वादयः षडङ्गपरिभाषया सिद्धाः न तदर्थेयं परिभाषा, किन्तु तदितरार्थेयमित्यर्थः । आकृतिपूर्वमत्र कर्षमात्रं द्रव्यमुक्तम् । अत्र तु कर्षाधिकमपि पूर्वत्र तु प्रस्थमात्रं जलमुक्तम् । अत्र प्रवलाभिवलपुरुषार्थं बहुयवागूसाधने प्रस्थाधिकमपि गृह्यते, क्वचित् प्रस्थन्युनेऽपि यूपः साध्यते पूर्व-मर्द्धशृतजलमुक्तम्, अत्र तु क्वचित् पादावशिष्टमपि मांस-रसे साध्यमाने पानयोग्योवशिष्ट इति युक्तिशब्दार्थः । तदेत-द्युक्तं भवति । यवागूः षड्गुणे तोये प्रस्थे प्रस्थाधिकेऽपि वा-रसेन पाके मांसस्य सुसिद्ध्यति हि यावता । अष्टशिष्टो भ-वैद्यूपः क्वचित्पादावशेषतः । अष्टादशगुणे तोये यूपः शार्ङ्गधरेरितः॥इति॥गुरवस्त्वाहुः॥परिभाषेयं पानीयसाधनविष-यिणी चक्रपाणिदत्तेन पानीयसाधनप्रकरणे षडङ्गपानीय-व्यङ्गपानीयानन्तरं पिप्पलीपानीयं लिखितं कणाशुण्ठयोः कषार्थं वारिप्रस्थेन साध्यम् । ननु अत्र कल्कद्रव्यस्य वापल-मिति कथमुक्तमत आह । नारायणान्तरङ्गः मृदुद्रव्य टप-लक्षणमिति । यद्यपि पिप्पलीये पानीये आनुषङ्गिक-त्वाद्युक्त्या परान् यूपान् पेयादीन् वा धात्वपेक्षया साधयेत् । तदा तण्डुलादीनां पलं कल्कीकृत्य वारि-प्रस्थेनार्द्धशृतेन साध्यम्, अतः षडङ्गपरिभाषैव प्रायः पेयादिसम्मतैर्युक्ता पञ्चादेषा लिखिता, पेयादयस्तु षडङ्गपरिभाषया सर्वत्र साधनीयाः, प्रायःशब्दात् प्रचु-रस्यले षडङ्गपरिभाषा सम्मता तदितरार्थेयमिति ।

भा०-पीपल और सोंठ बराबर मिली हुई १ तोला, और कायद्रव्य (चावलादि) आठ तोला लेकर चार-सेर जलमें पकावै । जब दो सेर रहजाय टतारकर कपडें-में छान यवागू (अति गाढ़ा और अत्यन्त स्वच्छ न होवै) पाक करे (किसीके मतसे १ तो० पीपल, १ तो० सोंठ इन दोनोंको दो तोलाले) ।

यहाँ पर यह प्रश्न होसकता है कि, यदि औषधि और काथद्रव्यकी इसप्रकार साधारण अधिकारी हो, तो ४ सेर जलमें दो तोला औषधिकी औटानेकी जो पडङ्गपरिभाषा लिखीहै, तिसका तात्पर्य क्या है इसका उत्तर यहीहै कि, यदि बहुत पेयादि बनानाहो तो पडङ्ग जल बनानेके विधानका तिस्से पेयादि बनावे ।

प्रचलामियुक्त, वहुत भोजन करने वालेके लिये जो यवागूका पाक करनाहो तो वह थोड़े जलसे नहीं होता, घस चावलोंके परिमाणके अनुसार काथ और काथके परिमाणानुसार औषधिभी अधिक डाले । जैसे किसीके केश खेचनेसे तिसके साथ उसके समस्त अंगप्रत्यंग खींचते हैं, यहभी वैसेहीहै ।

निश्चलकारने व्याख्या करीहै कि, यहाँ पर सुश्रुतमें कहा हुआ पल (पांच रत्तीका मान) ग्रहण करना चाहिये नारायणदासने व्याख्या कीहै की पीपल और सोंठ केवल उपलक्षण है, समस्त तक्षिण द्रव्योंकी अर्द्धकपर्प (१ तोला) के परिमाणसे ग्रहणकरे । समस्त मृदु द्रव्य एकपल (८ तोला) और मृदु घं कठिन मिश्रित द्रव्य दो कर्प ४ तोला ग्रहणकरे । पडङ्गकी परिभाषाके अनुसार जो यवागू आदि बनतेहैं, तिन स्थानोंके लिये यह परिभाषा नहींहै तिसके सिवाय और सब स्थलोंमें इस परिभाषाके अनुसार यवागूआदि तैयार होतेहैं ॥ चक्रपाणिदत्त और शार्ङ्गधर का मतभी यहीहै । पहले लिखेद्वय मतसे प्रचलामि मध्यमाभि और हीनामियालोंको विचार कर, यवागू पेया, और जूषादिकी औषधि, जल और मात्राका विधान करदे । यवागू, मंड, और पेयादिके सिद्ध करना, और तिनके लक्षण आगे लिखे जातेहैं ।

यवागूसाधने तण्डुलप्रकारमाह ।

यवागूमुचिताद्रक्ताच्चतुर्भागकृतावेदेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ—यवागूकी मात्रा स्वभावसेही जितने चावल खानेका अभ्यासहो, तिस्से चौथाई (कूटाहुमा चावल) चावलसे यवागू पाककरे ।

अन्नादिसाधने जलपरिमाणमाह ।

अन्नपंचगुणेसाध्यंविलेपीचचतुर्गुणे ।

मण्डश्चतुर्दशगुणेयवागूःषड्गुणेऽम्भसि ॥ ५९ ॥

अर्थ—अन्नादिसाधना—जितने चावलहों उतनेसे पंचगुणे जलमें अन्न पकावै, ऐसेही विलेपी चौगुणे जलमें, मण्ड १४ गुण जलमें और पेया छः गुणे जलमें पकावै ॥ ५९ ॥

मण्डादिलक्षणमाह ।

सिक्थकैरहितोमण्डःपेयासिक्थसमान्विता ।

यवागूर्बहुसिक्थास्याद्विलेपीविरलद्रवा ॥ ६० ॥

अर्थ—मंडादिके लक्षण—जिसमें जराभी कण नहो तिसको मंड कहतेहैं, जिसमें थोडा कणहो तिसको पेया कहतेहैं, जिसमें कण अधिकहो और तरलता थोडीहो, तिसको विलेपी कहतेहैं ॥ ६० ॥

अन्यञ्च ।

यवागूःषड्गुणेतोयेसिद्धास्यात्कृशराधना ।

तण्डुलैर्मुद्गमापैश्चतिलैर्वासाधिताहिसा ॥ ६१ ॥

अर्थ—और प्रकार कहा जाता है,—छेः गुणे जलसे यवागू पाक कियाजाय, तो वह खिचडीकी समान होजाताहै

१ उचिततण्डुलाच्चतुर्भागैकभागमानं सुद्रिततण्डुलमाहुस्तेः कृतां यवागूः षट्दित्यर्थः, जाऊ इति लोके ।

सो चावल, मूंग, उरद और तिल इनमेंसे चाहे जिस द्रव्यसे तैयार होसकताहै ॥ ६१ ॥

यवागूग्राहिणीवल्यातर्पणीवातनाशिनी ।

विलेपीचघनासिक्थैःसिद्धानीरेचतुर्गुणे ।

विलेपीतर्पणीहृद्यामधुरापित्तनाशिनी ॥ ६२ ॥

अर्थ—यवागू—धारक, बलकारक, तृप्तिकारक और वायुनाशक है । विलेपी चौगुणे जलमें पकावै । सो घना और कणदार रहै । विलेपी—तृप्तिकारी, हृदयकारी, मधुर-रससे युक्त और पित्तका नाश करनेवालीहै ॥ ६२ ॥

द्रवाधिकाघनासिक्थाचतुर्दशगुणेजले ।

सिद्धापेयावुधैर्ज्ञेयायूपःकिंचिद्वनःस्मृतः ॥ ६३ ॥

पेयालघुतराज्ञेयाग्राहिणीधातुपुष्टिदा ।

यूपोबल्यःस्मृतःकण्ठचोलघुपाकःकफापहः ६४ ॥

अर्थ—चौदहगुणे जलमें पकाकर तरल और कणरहते हुए जिसको उतार लियाजाय उसको यूप कहते हैं । पेया-पाकमें हलकी, धारक और धातुको पुष्ट करनेवाली है । जूस बल-कारी, कंठका साफ करनेवाला, पाकमें हलका, और कफ-नाशक है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

जलेचतुर्दशगुणेतण्डुलानांचतुःपलम् ।

विपचेत्स्रावयेन्मण्डःसभक्तोमधुरोलघुः ॥ ६५ ॥

नारीरेचतुर्दशगुणेसिद्धोमण्डस्त्वासिक्थकः ॥ ६६ ॥

अर्थ—४पल (३२ तां०) चावल कूटकर चौदह गुण जल-

१ मण्डुलानामिति । सुद्विगतण्डुलानामित्यर्थः । स्यापयेदिति यस्मादिनां पालयेत् । अस्तिवय इति विषयकंरहित इत्यर्थः । भस्मादि-रहितसिक्थकः शुद्धिर्हितोऽयं ।

से पाककरके कपडेसे छानले । साथ छोड़दे । तिसको मांड-
कहते हैं । मांड मधुररसयुक्त और पाकमें हलका है ॥ ६५ ॥ ६६
मांसरससाधनविधानमाह ।

द्रव्यतोद्विगुणं मांसं सर्वतोद्विगुणं पयः ।

पादस्थं संस्कृतं ह्येषः षडङ्गो यूप उच्यते ॥ ६७ ॥

अर्थ-मांसरसका साधन करनेमें और द्रव्य (दालादि)
जितनेहों उनसे दूना मांस ग्रहण करे । सबका वजन जितनाहो
उससे ८ गुण जलमें पकावै । चतुर्याश रहै तब दतारकर छानले ।
इसको षडङ्ग जूस कहते हैं ॥ ६७ ॥

पलानिद्वादशप्रस्थे घनेऽथ तनुके तु पट् ।

मांसस्य घटकं कुर्यात्पलमच्छतरे रसे ॥ ६८ ॥

अर्थ-घनमांसरस बनानाहो तो १२ पल (९६ तो०) मांस ४
सेर जलमें सिद्धकरे । मांसका पतलारस करना हो तो ६ पल
(४८ तो०) मांस, ४ सेर पानीके साथ और अच्छतर मांस-
रस बनानाहो तो १ पल (८ तो०) मांस चारसेर जलके
साथ सिद्धकरे । चौपाई रहै तब दतारले । अच्छतर मांस-
का रस बनानाहो तो पहले एक पल मांसको पत्थरपर पीसे
फिर गोलियें बनाय धीमें भूनलेना चाहिये । क्यों कि थोडा-
सा मांस बहुतसे जलके साथ सिद्धकिया जाय तो उसका गल-
जाना संभव है ॥ ६८ ॥

१ अस्वार्थः । घने मांसरसे कर्तव्ये प्रस्थे जले मांसस्य द्वादशपलं
दत्त्वा पक्तव्यम् । तदनु तनुके रसे कर्तव्ये मांसस्य षट्पलं पानीयं
प्रस्थमेव दातव्यम् । अच्छतरे रसे कर्तव्ये प्रस्थे जले मांसस्य पलं दत्त्वा
तन्मांसं पिष्ट्वा प्रस्थार्धशेषस्थितजले पक्त्वा भनुरूपं स्थाप्यं वस्त्रेण
छानयित्वा यूपः कार्यः । मांसस्य घटकं कुर्यादिति स्थिन्नमांसस्य
पलं पिष्ट्वा घटकान् विधाय घृतादौ भजयित्वा अच्छतररसं साध्य-
मित्यर्थः । अन्यथा मांसपलस्यातिद्रवपाके विलयनं स्यादित्य-
च्छतरे रसे घटकं कुर्यादित्याह ।

लाक्षारससाधनमाह ।

पङ्गुणेनाम्भसालाक्षादोलायंत्रेह्युपस्थिता ।

त्रिसप्तधापरिस्राव्यालाक्षारसमिदंविदुः ॥ ६९ ॥

अर्थ—लाखका जितना वजनहो, उससे छेंगुण जलके साथ दोलायंत्रमें पकाकर इक्कीसवार पसालेवै । पंडितलोग इसको ही लाक्षारस कहते हैं ॥ ६९ ॥

प्रक्षेपविधिमाह ।

प्रक्षेपःपादिकःकाथ्यात्स्नेहेकल्कसमोमतः ॥

परिभाषामिमामन्येप्रक्षेपेऽप्युचिरेयथा ॥ ७० ॥

अर्थ—काथमें जिस वस्तुका (मधु चीनी आदिका) प्रक्षेप देनाहो, तिसका परिमाण काथ्यका चौथा अंशहै और घी तैलादि स्नेह द्रव्यमें जो प्रक्षेप देना होताहै, तिसका परिमाण कल्ककी समान है ॥ ७० ॥

चूर्णादीनांभक्षणप्रकारमाह ।

कर्पश्चूर्णस्यकल्कस्यगुडिकानांश्चसर्वशः ।

द्रवशुक्त्यासलेढव्यःपातव्यश्चचतुर्द्रवः ॥ ७१ ॥

मात्राक्षौद्रघृतादीनांस्नेहकाथेषुचूर्णवत् ।

अर्थ—चूर्ण, कल्क, गुडिका और बटिका आदि एककर्म (२ तोला) के परिमाणसे प्रयोगकरे । लेहन करके सेवन करना हो तो औषधिसे दूने द्रव (तरल) पदार्थके साथ और

१ श्रेष्ठ पातव्यघृतादिसाधने तैलादिसाधने वा प्रक्षेपः कल्कसमो मतः ज्ञाप्यतेस्म इत्यर्थः । शर्करामधुप्रभृतीनामिति काथ्यादिति पाचनादिद्रव्यात् कर्पात् प्रक्षेपः पादिकाश्चतुर्मापको क्षेप इति चक्रपाणिदत्त सम्मतः । अन्येऽपि घृतादय इमां परिभाषां प्रक्षेपेऽपि उचिरे परिभाषयाऽभ्यनुः भतपय चक्रदत्ताऽपि तत्स्थीयत्य स्वसंग्रहे द्रष्टव्यतया ।

यद् यमदत्तया मतं है । पाचनादिभिः प्रक्षेपका परिमाण भलग द्रव्या है ।

पान करके सेवन करना हो, तो औषधिसे चौगुने द्रवपदार्थ-
के साथ प्रयोग करना चाहिये । स्नेह कायमें शहद और
घृतादिके प्रक्षेप देनेकी मात्रा चूर्णादिकी समान एककर्म
(२ तोला) है ॥ ७१ ॥

काथेनचूर्णपानंयत्तत्रकाथप्रधानता ।

प्रवर्ततेनतेनात्रचूर्णापेक्षश्चतुर्द्रवः ॥ ७२ ॥

अर्थ-चूर्णके साथ कायका प्रयोग करनाहो (चूर्णकी

१ चूर्ण कल्को गुड़िका, चकारात् घटिकाश्च यद्युपयुज्यते च तर्हि
सर्वत्र घट्यमाणविशेषं घिना तोलकद्रवमुपयुज्यते । स चूर्णादिः कर्मः
यदि छेदव्यः तर्हि द्रवशून्या माक्षिकप्रभृतीनां भर्द्रपलेन तोलकचतु-
ष्टयेनेति यावत् । चूर्णस्य तथा लेदुसुखत्वात् पाठव्यश्चेतदा चतुर्द्रव
इति माक्षिकादीनां चतुर्गुणेन पलेनेति शेषः । तथा सति चूर्णस्य पातुं
सुखत्वादित्यस्य प्रधानार्थः सांप्रदायिकैश्चक्रदत्तादिभिर्मन्यते । अन्येतु
प्रक्षेप्येनामन्यते । तथा हि तेषामपमर्थः । यत्र चूर्णस्य कल्कस्य गुड़िका-
नाश्च भेषजानामुपयोगस्तत्र कर्मप्रक्षेपो दातव्यः । शेषार्थः सुगमः ।
मात्राक्षौद्रघृतादीनामिति क्षौद्रप्रभृतीनां मधुघृतगुडानां स्नेहे का-
ये वा प्रक्षेपचूर्णवत् । चूर्णस्य उक्तः तर्हि यत्र घृतादयः प्रक्षेपास्त-
थेषां घृतक्षौद्रादीनां कर्म इत्यर्थः । एतन्न रास्त्रादिकायस्य कर्मस्य प्रक्षे-
प्यं मिलितो शर्करामधुनोः पादिकं मापचतुष्टयं प्रक्षेप्यमिति साम्प्रदा-
यिकमतम् । पटुक्तमन्यत्र । 'प्रक्षेपः पादिकः काप्यात् स्नेहे कल्क-
समोमतः' इति । अन्येतु शर्करामधुनोः प्रत्येकं द्रव्यं कृत्वा मिलि-
त्वा द्रव्यद्वयं कर्म दातव्यमाहुः- 'शाणो द्यौ द्रव्यं विद्यात् तौ द्यौ
कर्म द्युम्बरः । परमव्याहृतमनुमतमेवेति न्यायात् । चक्रदत्तानुमत-
मेतत् । किन्तु सर्वत्रैवम् । अपितु कचित् किञ्चिदोषवयोवद्वाद्यपेक्ष-
या इत्यवधेयम् । वस्तुतस्तु वातज्वरात् रास्त्रादिकपाये शर्करामा-
पकत्रयं मधुमापैकं प्रक्षेप्युमहति यथा चैतत् । तथा- 'षोडशाष्टचतुर्भां
वाते पिने कफे क्रमात् । क्षौद्रं कषाये दातव्यं त्रिपरीतां तु शर्करा' इति
संहितोपाये स्वयमेव चक्रेण व्याख्यातम् । इदं तु पादिकः प्रक्षेपात्
क्रियासिद्धिरितिप्रमाणेन तत्राभिहितं द्वयमन्यत् । किञ्च चूर्णवदिति
प्रक्षेप्यं क्षौद्रघृतादीनामपि चूर्ण इव चूर्णस्य जरणादियथा शायः
प्रक्षेपस्तथा क्षौद्रघृतादीनामपि शाणो देय इति शुरुतः । प्रक्षेपपादिकः
काप्यादिति वाक्यस्य एकवाक्यत्वान्मनाहरम् ।

२ यत्र चूर्णपानं यौगिकं तत्र चूर्णस्य प्रधान्यात् कर्ममार्गं त-

प्रधानताके हेतु) तो चूर्णसे चौगुना काथ लेकर प्रयोग करे; परन्तु काथके साथ चूर्ण प्रयोगके सम्बन्धमें ऐसा नियम (चूर्णसे चौगुना) युक्तियुक्त नहीं है । यह विधि केवल चूर्ण औषध प्रयोगके सम्बन्धमें जानना । जहांपर कपायपानकी विधि होगी और कपायकी प्रधानता दिखाई देगी, तहांपर उमर और बलाबलका विचार करके चतुर वैद्य कपाय आरचूर्णकी मात्राको कल्पित करे ॥ ७२ ॥

मतान्तरमाह-द्रव्यविशेषस्य ।

मापिकंहिंगुसिन्धूत्थंजरणाद्यास्तुशानिकाः ।

सितोपलागुणक्षौद्रंसामान्यांशप्रकल्कनाः ॥७३॥

अर्थ-दूसरे मतमें कोई २ कहते हैं कि हिंग और सेंधा (तीक्ष्ण होनेसे) एक मापा (पराति) जीरा आदि एकशान (२ तोला) प्रक्षेपदेव और चीनीगुड, मधु आदिका प्रक्षेप देनाहो तो गुरुके उपदेश और साधारण वचनके अनुसार प्रबलामि, मध्यमामि और क्षीणामियुक्त पुरुषको क्रमानुसार एकपल (८ तोले) तीन कर्ष (६ तो०) और अर्द्धपल (४ तो०) (सुश्रुतके मानसे) की मात्राका प्रयोग करे ॥७३॥

दोषभेदेमधुशर्करयोःप्रक्षेपमानमाह ।

षोडशाष्टचतुर्भागंवातापित्तकफार्तिषु ।

स्मात् छाभ्यं चतुर्गुणं तस्य काथस्य तत्र माधान्यं यच्च छापेन सह प्रक्षेप्यस्य चूर्णस्य पानं तत्र काथस्य प्रधानत्वाच्चूर्णापेक्षी चतुर्द्रव्यः चतुर्गुणत्वं द्रवस्य न प्रवर्त्तत इति ।

१ हिङ्गुसैन्धवयोः प्रक्षेपयोस्तैर्हृण्यान्मापिकं, जीरकाद्याः पुनः छाभ्यात् पादिका एव । सितोपलासिताशर्करादीनाञ्च सामान्यानां सामान्यधाकपानां उक्तमस्य पलं मात्रा इत्यादीनामिव अंशांशकल्पनाः कार्या इति सामान्यांशम् । पलत्रिकर्षार्द्धपलरूपं सौश्रुतमित्यर्थः । सामान्यमिति प्रक्षेपः पादिकः छाभ्यादिति तेन पादिका इति श्रवः ।

क्षौद्रं कपायेदातव्यं विपरीतातुशर्करा ॥ ७४ ॥

अर्थ—काथमें मधुका प्रक्षेप देना हो, तो वायुकी अधिकतामें काथके सोलहवें हिस्सेका एक हिस्सा, पित्तकी अधिकतामें काथका आठवाँ भाग, कफकी अधिकतामें काथका चौथा भाग मधुप्रक्षेपदे । चीनीका प्रक्षेप इस्से विपरीत है । अर्थात् वायुकी अधिकतामें काथसे चौथाई, पित्तकी अधिकतामें आठवाँ भाग और कफकी अधिकतामें काथका सोलहवाँ भाग चीनीका काथमें प्रक्षेपदे ॥ ७४ ॥

क्षीरादिपाकमाह ।

द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् ।

क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥ ७५ ॥

क्षीरमस्त्वारनालानां पाको नास्ति विनाम्भसा ।

सम्यक्पाकं न गच्छंति तस्मात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—जिस द्रव्यके साथ दूध पकाना हो, तिस्से आठ गुण दूधसे चौगुना जल डालकर पकावै । जब देखे कि जलका अंश जल गया केवल दूध बाकी है, तब उतारले । दूध, दही मस्तु और कांजी इनका पाक, विना जलके नहीं होता । इसकारण भली भाँतिसे पाक करनेको चौगुने

१ षोडशाष्टचतुर्भांगमिति घायौ पित्ते च कफे च कपायपाने क्षौद्रं प्रक्षेप्यं । घायौ षोडशांशं, पित्ते अष्टांशं, कफे चतुर्भांशं । शर्करायास्तु घायौ चतुर्भांशं, पित्ते अष्टमांशं, कफे षोडशांशमिति विपरीतेति वचनसामर्थ्यात् ।

२ एतत्तु वचनं केवलक्षीरपाकपात्रनादौ क्षीरपंचमुत्पाद्यामित्यर्थः । नान्यत्र तैलपूतादिपाके तत्र द्रव्यान्तरमस्त्येव केवलतैलादिपाके चतुर्गुणं क्षीरमेवास्ति न द्रव्यान्तरमस्ति अत्र कण्ठोक्तत्वात् परिभाषा न प्रयत्नते । यथा 'अभ्यक्ताः पुक्तलेशोक्तसन्दिग्धार्यप्रकाशिका' इति अभिप्रेत्य व्याख्येयमिति शुरुषः ।

जलके साथ पाक करे । परन्तु यह नियम केवल क्षीरमें पके हुए पाचनादि (क्षीरपंचमूल्यादिकाथ) के लिये है । घृत-तेल आदिके साथ दुग्धपाक करना हो तो वहांपर यह नियम ठीक नहीं है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

परिभाषाप्रदीपसंग्रहका द्वितीयखण्ड समाप्त हुआ,

अथ तृतीयः खण्डः ।

अथ स्नेहसाधनेकाथ्यजलादेः परिमाणमाह ।

काथ्याच्चतुर्गुणं वारिपादस्थं स्याच्चतुर्गुणात् ।

स्नेहात्स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः ॥

चतुर्गुणन्त्वष्टगुणं द्रव्यं द्वैगुण्यतो भवेत् ॥ १ ॥

अर्थ-काथद्रव्यको चौगुने जलके साथ पाक करे, चौथा अंश बच रहने पर उतारकर छानले । फिर स्नेहके (घृत-तेलादिके) घरावर दूध और चतुर्थांश कल्कके साथ स्नेह-पाक करे । ऊपर कहे हुए को “चतुर्गुण” शब्दके स्थानमें आठ गुण जलदान करे । क्यों कि द्रवद्रव्यको हूना लेना चाहिये ॥ १ ॥

अपिच ।

अत्र द्रवान्तरानुक्तौ क्षीरमेव चतुर्गुणम् ।

द्रव्यान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत् ॥ २ ॥

अर्थ-स्नेहपाक करनेमें और कोई द्रव (जलादि) पदार्थ न पड़ा हो और केवल दूधसे ही पाक सिद्ध करना हो, तो स्नेहसे चौगुना दूध देकर पाक करे । और जो कोई और द्रवद्रव्य पड़ा हो तो स्नेहके घरावर दुग्धसे पाक करे ॥ २ ॥

अन्यच्च ।

जलमष्टगुणंक्वाथ्यात्क्वाथश्चजलपादिकम् ।

क्वाथाच्चपादिकंस्नेहःस्नेहात्कल्कस्तुपादिकः ॥ ३ ॥

अर्थ-आठ गुण जलमें क्वाथ्यद्रव्य पकायकर जब चौथाई अंश बच रहे तो उतार कर छानले । फिर क्वाथसे चौथाई स्नेह और स्नेहसे चौथाई कल्कसे पाक सिद्ध करै ॥ ३ ॥

पञ्चप्रभृतियत्रस्युर्द्रवानिस्नेहसंविधौ ।

तत्रस्नेहसमान्याहुरर्वावचस्याच्चतुर्गुणम् ॥ ४ ॥

अर्थ-यदि स्नेहको पांच या इस्से अधिक द्रवद्रव्योंके साथ पाक करनाहो, तो यह प्रत्येक द्रवद्रव्य स्नेहकी बराबर देना चाहिये । परन्तु यदि एकसे चार तक द्रवद्रव्यकरके पाक करनेकी विधिहो, तो प्रत्येक द्रव्य स्नेहसे चौगुना लेना चाहिये ४

अन्यच्च ।

एकद्वित्रिद्रवद्रव्यैःकुर्यात्स्नेहाच्चतुर्गुणम् ।

क्षीरंस्नेहसमं देयंचतुर्भिश्चचतुर्गुणम् ॥ ५ ॥

अर्थ-एक, दो या, तीन द्रवद्रव्यके साथ स्नेहपाक कर-

१ अत्र स्नेहादेर्यत्र यशोधरटीकाव्याख्यामाह अवमिलित्वैव चातुर्गुण्यं युक्तमेव एकादिचतुर्द्रवपर्यन्तम् अवानुपपातिरेषा । द्रवचतुष्टयविषयेण चरितार्थमेव तद्वचनम् । तत्र द्रवचतुष्टयसमवेनेति नैवशक्तिः तस्मादेकेनापि चातुर्गुण्यमित्यादि चतुःसममित्यन्तयोः परिभाषया द्रवचतुष्टयविषये तावत् । यत्र स्नेहादेः पाकविधौ द्रवानि पञ्चप्रभृतियत्सप्ताष्टाधिकतराणि च देयानि स्युः । तत्र स्नेहसमानानि देयानि । अर्वांगिति पञ्चशब्दस्य अर्वाङ्कः पञ्चमादित्यर्थःतेन एकादि चतुःपर्यन्तं द्रवाणां च तुर्गुण्यं स्नेहभागोपक्षया इति । एक, द्वि, त्रि, द्रवयोगेऽपि मिलित्वा चातुर्गुण्यम् । चतुर्षु द्रवेषु तु प्रत्येकं स्नेहस्य भागोपक्षया चातुर्गुण्यमित्येके वदन्ति । एतेन चतुर्णां चातुर्गुण्यम् । त्रयाणामपि द्वाभ्यामपि एकस्यापि चातुर्गुण्यम् । पञ्चापेक्षया एषामेकादिचतुर्णां प्रति चार्वाङ्कत्वमित्यभिप्रायः ।

नाहो, तो प्रत्येक द्रव्यको स्नेहसे चौगुना लेना चाहिये, दूध स्नेहकी बराबरले और चार द्रवद्रव्यसे पाक करनाहो तो उनके बराबर भागमें मिले हुए स्नेहसे चौगुना लेना योग्य है ॥ ५ ॥

कल्काच्चतुर्गुणंस्नेहःस्नेहात्तोयंचतुर्गुणम् ।

क्वाथ्याच्चतुर्गुणंवारिक्वाथ्यःक्वाथसमोभवेत् ॥ ६ ॥

अर्थ—कल्कसे चौगुना स्नेह, स्नेहसे चौगुना जल, क्वाथ्यद्रव्यके वजनसे चौगुना जल और क्वाथ्य द्रव्य क्वाथकी (जितना क्वाथ स्नेहमें डालनाहो) समान वजनसे देना ॥ ६ ॥

जलस्नेहौपधानाञ्चप्रमाणंयत्रनेरितम् ।

पादःस्यादौपधंस्नेहात्स्नेहात्तोयंचतुर्गुणम् ॥ ७ ॥

अर्थ—जल, स्नेह और औषधिका परिमाण नकहाहो तो स्नेहकी चौथाई औषध और स्नेहसे चौगुना जल प्रदानकरे ॥ ७ ॥

वृषादिकुसुमात्कल्कःकेवलःस्नेहसिद्ध्ये ।

यत्रोक्तःस्नेहपादार्द्धःस्नेहकायैर्मेनीपिभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—जो स्नेहमें केवल वासक आदिके फूलका कल्क देनेकी विधिहो तो यह कल्क स्नेहका आठवां भाग ग्रहण करे ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

स्नेहःसिद्ध्यतिशुद्धाम्बुनिःक्वाथस्वरसैःक्रमात् ।

कल्कस्ययोजयेदंशंचतुर्थपष्टमष्टमम् ॥ ९ ॥

अर्थ—जल अथवा क्वाथ और स्वरससे स्नेहपाक करनेकी विधिहो, तो वही पर कल्क क्रमानुसार चतुर्थांश, पष्ठांश और अष्टमांश रखे । अर्थात् केवल जलसे स्नेहको सिद्ध करनाहो तो स्नेहसे चौथाई कल्कदे । क्वाथसे पाक करनाहो तो छठा

अंश और स्वरससे स्नेहपाक करनाहो तो स्नेहका आठवां हिस्सा कल्कप्रदान करे ॥ ९ ॥

स्वरसक्षीरमाद्भ्रूल्यैःपाकोयत्रेरितःकंचित् ।

जलंचतुर्गुणंतत्रवीर्याधानार्थमावपेत् ॥ १० ॥

नमुञ्चतिरसंद्रव्यंक्षीरादिभिरुपस्कृतम् ।

सम्यक्पाकोनजायेततस्मात्तोयंचतुर्गुणम् ॥ ११ ॥

अर्थ- “ स्वरसक्षीरमाद्भ्रूल्यैरत्रोपलक्षणेत्तीया ” माद्भ्रूल्यं दधि स्वरस, दूध और दहीसे किसी स्थलमें पाककरनेकी विधि हो तो वहांपर चौगुना जल डाले । कारण कि केवल दही दूध आदि करके स्नेहका पाक भलीभांतिसे नहीं हो सकता । इस कारण औषधिके घोर्यवान होनेके लिये स्नेहमें चौगुना जल डाले ॥ १० ॥ ११ ॥

१ विष्णुतैलपाके केवलं दुग्धचतुर्गुणः पाकस्तत्र वीर्याधानार्थं जलं चतुर्गुणं केचिदिच्छन्ति तदसत् । तायं क्षीरपाकः किन्तु क्षीरचतुर्गुणे तैलस्य पाकः नैव तैलं द्रवप्रधानम्, एतदंगधरं तैलमिति ग्रन्थान्तरे पाठात् अंगधरं कल्कं प्रधानमित्यर्थः । अथवा पाको द्विविधः क्षीरस्य क्षीरकरणकः । क्षीरकर्मकः । अत्र पुनः क्षीरकरणकः पाकः । क्षीरकर्मकः क्षीरपाकः “ द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरातोयं चतुर्गुणम् ” इति वचनात् । अत्र चतुर्गुणं द्रव्यं विना सम्यक् पाको न स्यादित्यर्थः । यदि तु विष्णुतैले जलं चतुर्गुणं ददाति तदा द्रवबाहुल्यदोषः स्यात् चतुर्गुणदुग्धे नैव फलसिद्धेः । गुरुवस्त्वाहुः । परिभाषा तु कंठोक्तं विना इति शेषः ॥ अथात् विष्णुतैलको चौगुने, दूधसे पाक करनेकी विधि है । घोर्यवन्त करनेके लिये कोई २ दसमें चौगुना जल डालनेकी विधि कहते हैं । परन्तु यह विधि ठीक नहीं है । क्योंकि यह क्षीरपाक नहीं है, चौगुने दूध करके तैलपाककी विधिके अनुसार पाक करना होगा । यद्यपि विष्णुतैल चौगुने जलसे पाक किया जाता है, तो भी यह उपकारी नहीं होता. वरन द्रव्य-बहुता पतके दोषसे अपकारी होजाता है, अतएव गुरुदोषपट्टेशके अनुसार जैसा प्रचलित है, वैसाही पाक सिद्ध करे ॥

स्नेहपाकविधौ यत्र क्षीरमेकन्तुकथ्यते ।

तोयादीनामनिर्देशे क्षीरमेव चतुर्गुणम् ॥ १२ ॥

“एतदेव समाधानमत्युचितम्” ।

अकल्कोऽपि भवेत् स्नेहोयः साध्यः केवले द्रवे ॥ १३ ॥

अर्थ—जहां पर स्नेह पाकमें जलादिका देना नहीं लिखा है और केवल दूधका देना लिखा है वहां पर चौगुने जलसे स्नेहादिका पाक सिद्ध करे । और जिन स्नेहोंकी बिना कल्कके केवल द्रवद्रव्यसे पाक करनेकी विधि है तिनकोभी चौगुने जलसे पाक करे ॥ १२ ॥ १३ ॥

स्नेहपाकविधौ यत्र प्रमाणं नेरितं क्वचित् ।

स्नेहस्य कुडवंतत्र पचेत् कल्कपलेन तु ॥ १४ ॥

अर्थ—स्नेहका परिमाण न लिखा हो तहां आधसे र स्नेह एक पल (८ तो०) कल्क ग्रहण करे ।

मानानुक्तौ घृतते तैले प्रस्थमाहुश्चिकित्सकाः ॥ १५ ॥

अर्थ—जो घृत तेल आदिका परिमाण न लिखा हो, तो चिकित्सक लोग एकप्रस्थ (४ सेर) ग्रहण करें ॥ १५ ॥

द्विगुणं त्रिगुणं वापि बहुमात्राञ्च पादिकम् ।

योगं यदि पचेन्मूढो हीनवीर्य्यं भवेत्तदा ॥ १६ ॥

अर्थ—यदि अज्ञानताके वश स्नेहके परिमाणसे, स्नेह दूना या तिगुना ग्रहण किया जाय, अथवा अधिक मात्रा लिखी रहने पर तिसका चौथाई आदि अंश कम करके स्नेहादिका पाक किया जाय तो वह हीनवीर्य्य होता है; अतएव घृत तेलका जितना वजन कहा हो, उतना पूर्ण मात्रासे तैयार करे ॥ १६ ॥

तुलाद्रव्येजलेद्रोणोद्रोणेद्रव्यतुलामता ।

अनुक्तेद्रवकायैतुसर्वत्रसलिलमतम् ॥ १७ ॥

अर्थ-द्रव्यका (औषधिका) परिमाण एक तुला होनेपर यदि जलका परिमाण न कहाहो, तो एक द्रोण जल प्रदान करे । जल एक द्रोण (६४ सेर) कहाहो और द्रव्यका परिमाण न होवे तो द्रव्य (औषध) एक तुला ग्रहण करे । जहां पर द्रव कहाहै, परन्तु साफ यह नहीं लिखा कि क्या द्रव है, तो वहांपर सब जगह जलही प्रदान करे ॥ १७ ॥

अन्येष्याहुः ।

अङ्गेऽप्यनुक्तेविहितन्तुमूलंभागेऽप्यनुक्तेसमताविधेया ॥

द्रवेऽप्यनुक्तेजलमेवदेयंकालेऽप्यनुक्तेदिवसस्यपूर्वम् ॥

अर्थ-द्रव्यका अंग न कहा होतो मूल, भाग न कहाहो तो समानभाग, द्रवद्रव्य न कहाहो तो जल ग्रहणकरे और काल न कहाहो तो प्रातःकालको समझना चाहिये ॥ १८ ॥

प्रसारण्यादिनिर्दिष्टशतमेकंपृथक्पृथक् ।

जलद्रोणेनचैकैकंसाधयेच्छृङ्गकुट्टितम् ॥ १९ ॥

काथ्यद्रव्यस्यबाहुल्यादुदकंस्वलपमेवंतु ।

सम्यक्पाकंनजायेतहीनवीर्य्यन्तुकेवलम् ॥ २० ॥

अर्थ-गन्ध प्रसारणी (पसरन) आदि काथ्यद्रव्योंका परिमाण अधिकहो तो उनको एक साथही न लेकर अलगरूपसे एक शतपल (१२॥ सेर) द्रव्य ग्रहण कर भली भांतिसे कूटी और एक द्रोण (६४ सेर) जलसे पाक करे । क्योंकि काथ्य-

द्रव्य परिमाणमें अधिकहो तो बड़े पात्रके न मिलनेसे तिसके योग्यजल एक साथ ही नहीं दिया जाता । काथ्यद्रव्यमें बारम्बार जल देनेसे अथवा जलका परिमाण कम होनेसे भलीभाँतिसे पाक सिद्ध न होनेपर औषधिका धीर्य निकल नहीं सकता, वस यह औषधें हिनवीर्य हो जाती हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

कल्ककाथावनिर्दिष्टगणान्तस्मात्समादरेत् ।

समस्तवर्गमर्द्धवायथालाभमथापिवा ॥

प्रयुज्जीतभिषक्प्राज्ञःकालसात्म्यविभागवित् ॥ २१ ॥

अर्थ—कल्क और काथके द्रव्य न कहेहों तो वहाँपर स्नेहमें कहे हुए गणके समस्त द्रव्य लाकर कल्क और काथके योग्य परिमाणसे (पहले लिखा गया है) ग्रहण करे गणमें कहे हुए समस्त द्रव्य, या आधे अथवा तहाँतक मिले उनकोही, चतुर चिकित्सक काल और सात्म्यादिका विचार करके प्रयोग करे ॥ २१ ॥

यंत्रार्धिकरणेनोक्तिर्गणस्यात्स्नेहसंविधौ ।

तत्रैवकल्कनिर्व्यूहौविध्येतेस्नेहवेदिना ॥ २२ ॥

अर्थ—पहलेही कहा गया कि कल्क और काथका द्रव्य और भाग न कहाहो तो स्नेहमें कहे हुए द्रव्योंका कल्क और काथ ग्रहण करे, परन्तु यह सब जगह ग्रहण नहीं किया जासकता । नीचे टीके की व्याख्याका प्रमाण दिखाया जाता है ॥ २२ ॥

१ यंत्रत्यादि—अधिकारितया यत्र गणत्वमधिकृतं तत्रोभयकल्पना । यत्र तत्रास्ति तत्र कल्ककल्पेनैव । अतश्चक्रपाणिपुस्तकसंग्रहे पिप्पल्यादि-पृष्ठे तेनैव परिभाषा लिखिता । तत्र निश्चलकरेण व्याख्यातम् । नचायं पिप्पल्यादिगणोपधिकरणेन उक्तइति । अतः पिप्पल्यादेः कल्क-

गणोक्तमपियद्रव्यं भवेद्वाधावयौगिकम् ।

तदुद्धरेद्यौगिकन्तु प्रक्षिपेद्यदर्कितितम् ॥ २३ ॥

अर्थ-जिस रोगमें जैसी औषधिके प्रयोग करनेकी विधि कही है; तिसमें जो कोई द्रव्य विशेष अवस्थाके कारण रोगके अयोग्य हो, तो उसको ग्रहण करे नहीं । योगमें न कहा द्रव्यभी यदि व्याधिके निवारण करने योग्य हो, तो बुद्धिमान् चिकित्सक विचार करके तिसको प्रयोग करे ॥ २३ ॥

साध्यहोयाः न क्वायकल्कं कुर्यादिति । अत्र चोक्तम् । “ एतद्वाक्य-
बलोदेष कल्कसाध्यं परं घृतमिति ” । यत्र स्नेहसाधने अधिकरणेन
उक्तः स्यात्तत्र गणे कल्कनिर्व्यूहौ साध्यौ । यत्र गणे अधिकरणेन
उक्तिर्नास्ति तत्र कल्ककल्पेनैव न क्वायः कार्य इति ।

जहां पर संग्रहकारोंने गणोंका वर्णन किया हो वहांपर कल्क और
क्वाय दोनों ग्रहण करे और जहां न कहा हो वहां स्नेहमें कही हुई
औषधियोंका कल्क ग्रहण करे । महात्मा चक्रपाणिदत्तने अपने संग्रही-
त ग्रंथमें ऐसीहि परिभाषा लिखी है । ऊपर कहे हुए “ गण ” शब्द-
से “ विशारीकन्दादिगण ” समझना चाहिये । पिप्पल्यादिगणके
सम्बन्धमें ऐसी युक्ति नहीं है ।

१ यत्र व्याधी ये गणाः सन्ति तत्रैव धातवपेक्षया न विहितास्तत्र
गणोक्ता अपि अयौगिकत्वाद्देयाः धातुव्याध्यनु रूपं कीर्तितमपि यौगिकं
प्रक्षिपेत् । यथा वायौ रुक्षशैत्यादि, तीक्ष्णकटुकादिपित्ते, कफे स्निग्ध
मधुरादि । एतत् सर्वं गणोक्तमपि न देयं घातादिषु यद्युक्तं तदेव
देयं । यदुक्तं लोहशास्त्रे पातञ्जलादयः “ उचितमपि हेयमौषधमनु-
चितमुपादयमिति संक्षेपः ” उचितमप्ययौगिकं हेयम् अनुचितं
यौगिकमपि धातवनुरूपमुपादेयं ग्राह्यमित्यर्थः ।

अर्थात् वायुरोगमें रुखे और शीतल द्रव्यादि पित्तसे उत्पन्न हुए
रोगमें तीक्ष्ण और कटु रसादि और कफ रोगमें मधुर रसादि द्रव्य
गणमें कहेभी हो तोभी प्रयोग न करावातादि रोगमें जैसे द्रव्य प्रयोगकी
विधि है अर्थात् वातरोगमें स्निग्ध और मधुरद्रव्यादि पित्तरोगमें कटु
और मधुरद्रव्यादि और कफरोगमें तीक्ष्णद्रव्यादि योगमें न कहे हुए
हो तोभी प्रयोग करे । चिकित्सिकको चाहिये कि धातुके अनुरूप
औषधीकी कल्पना करकरे ॥

शार्ङ्गधरस्त्वाह ।

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्यघृतं वा तैलमेव वा ।

चतुर्गुणेद्रवेसाध्यंतस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ २४ ॥

“पलोन्मितेति पानादौ मात्रा देयानिष्पन्नस्य घृतादेः”

अर्थ—कल्कसे चौगुना घी वा तैल चौगुने (स्नेहकी अपेक्षा) द्रवद्रव्यसे पाक कर ले । पानादिमें इसकी एक पल मात्राका प्रयोग करे । शार्ङ्गधरका यही मत है ॥ २४ ॥

निक्षिप्य काथयेत्तोयं काथद्रव्याच्चतुर्गुणम् ।

पादशेषं गृहीत्वा तु स्नेहं तेनैव साधयेत् ॥ २५ ॥

अर्थ—काथद्रव्यमें चौगुना जल डालकर पकावै । जब चौथाई रहजाय तो उतारकर छान लिया जाय । फिर तिस्से स्नेहादि पाक करे ॥ २५ ॥

क्षीरेद्विरात्रं स्वरसे त्रिरात्रं ।

तक्रारनालादिषु पंचरात्रम् ॥

स्नेहं पचेद्वैद्यवरः प्रयत्ना-

दित्याहुरेकेभिः पञ्चः प्रकीर्णाः ॥ २६ ॥

अर्थ—वृद्धचिकित्सकलोग कहा करते हैं कि, दूधका पाक दोरातमें, स्वरसका पाक तीन रातमें, तक्र (घोल) और अरनाल (कांजी) आदिका पाक पांचरात्रिके मध्यमें होता है । अर्थात् स्नेहादि इन सब द्रव्योंसे पाक करना हो तो ऊपर कहे हुए नियमके अनुसार पाककार्य करे ॥ २६ ॥

द्वादशाहन्तु मूलानां वल्लीनां क्रममेव च ।

एकाहं व्रीहिमांसानां पाकं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २७ ॥

अर्थ—चतुर वैद्यलोग मूल और लतादिका पाक १२ दिनमें और मांसादिका पाक एकदिनमें तैय्यार करते हैं ॥ २७ ॥

चतुर्गुणेमृदुद्रव्येकठिनेऽष्टगुणंजलम् ।

तथाचमध्यमेद्रव्येदद्यादष्टगुणंपयः ॥

अत्यन्तकठिनेद्रव्येनीरंपोडशिकंमतम् ॥ २८ ॥

अर्थ—मृदुद्रव्य चौगुनेजलसे और कठिनद्रव्य आठगुने जल-
से पाक करे । मृदु और कठिन इनदोनोंके बीचका द्रव्य
अर्थात् जो द्रव्य अत्यन्त मृदु और अत्यन्त कठिन नहीं
हैं, तिसमें भी आठगुणा जल देकर पाककरे । अत्यन्त कठिन
द्रव्य १६ गुणे जलसे पाककरे ॥ २८ ॥

कर्पादितःपल्यावत्क्षिपेत्पोडशिकंजलम् ।

तदूर्ध्वकुडवंयावद्भवेदष्टगुणंपयः ॥

प्रस्थादितःक्षिपेत्रीरंखारीयावच्चतुर्गुणम् ॥ २९ ॥

अर्थ—एककर्ष (२ तो०) से १ पल (८ तो०) तक
औषधि १६ गुण जलमें और तिस्से ऊपर कुडव (६॥
सेर) तक औषधिमें आठ गुण जलसे पाककरे । प्रस्थ (२
सेर) से खारी (५१२ सेर) तक औषधिमें चौगुना जल
ढालना चाहिये ॥ २९ ॥

अम्बुकाथरसैर्यत्रपृथक्स्नेहस्यसाधनम् ।

कल्कस्यांशंतत्रदद्याच्चतुर्थपष्टमष्टमम् ॥ ३० ॥

अर्थ—भक्त, काथ और स्वरससे अलग स्नेहका पाक
करना हो तो वहांपर कल्क अर्थात् जलसे, स्नेह पाकमें च-
तुर्थांशका एक अंश कल्कदे; काथसे स्नेहपाक करनाहो तो
पष्ठांशका एक अंश कल्क और स्वरससे स्नेहपाक करनाहो
तो अष्टमांशका एक अंश कल्क प्रदान करे ॥ ३० ॥

१ केवलजलासिद्धे स्नेहमात्रकल्कस्य चतुर्थांश स्नेहापेक्षायादेयम्
एवंक्रमात् केवलजलापासिद्धे कल्कस्यषडंशदेयम् । रसेतिस्वरसैः
सिद्धेकल्कस्याष्टांशदेयमित्यर्थः ।

दुग्धेदध्निरसेतत्रेककल्कोदयोऽष्टमांशिकः ।

कल्कस्यसम्यक्पाकार्थतोयमत्रचतुर्गुणम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—दूध, दही, स्वरस और मक्का इनसे स्नेहपाक करनाहो तो आठ भागका एक भाग कल्कदे । और कल्कसे भली भांति पाक होनेके लिये चौगुना जल डाले । वृद्धवैद्योंका यह मतहै ॥ ३१ ॥

द्रवानियत्रस्नेहेषुपंचादीनिभवन्तिहि ।

तत्रस्नेहसमान्याहुयथापूर्वचतुर्गुणम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—स्नेहपाकमें यदि पांच या अधिक द्रवपदार्थसे पाक करनेकी विधि कहीहो तो प्रत्येक द्रवद्रव्यका परिमाण स्नेहकी समान ग्रहणकरे और एकसे चारतक द्रव

१ केषलुग्धसिद्धे तैलादौ स्नेहादष्टांशिकःकल्कःकार्यः। एवंदध्निरस इति स्वरूपे । तत्र इति पारिभाषिकतत्वे । सर्वत्राष्टांशिकः कल्को देयः । एतेषां घनत्वेन कदाचित् सम्यक् पाकाऽभावात् सर्वास्मिन्नपि चतुर्गुणं जलं दापयन्ति वृद्धाः ।

२ पंचादीनीति पंचषट्समाष्टकानि तदतिरिक्तान्यपि यत्रस्नेहे द्रवाणि देयानि स्युःतत्रेमानि सौहृदुत्पानि भवन्ति । यथा पूर्वमिति प्रतिक्रोमरीत्या पूर्वं पूर्वं चतुः प्रभृत्येकपर्यंतं प्रत्येकं स्नेहाच्चतुर्गुणं द्रवदेयमिति केचिदाहुः। अन्येतु एकादिचतुःपर्यन्तम् मिलित्वा चतुर्गुणं दत्ते तेनैकस्यापि चातुर्गुण्यं द्वाभ्यामपि त्रयाणामपि चतुर्णामपि चातुर्गुण्यमिति ।

यथा महेश्वरचक्रशेषटीकायाम् ।

शुद्धचीतैले शुद्धचीकाथं द्वादशशरावं दुग्धशरावं चतुष्टयं मिलित्वा षोडशशरावंटीकायां लिखति । एवं द्वादशशरावेषोडशशरावं दत्त्वा एकस्य द्रव्यस्य चतुर्गुणं लिखति । एवं षष्टिमधुगाम्भारीफलयोर्मिलितयोश्चतुःषाष्टशरावं पानीये पक्त्वा शिष्टषोडशशरावं दत्त्वा तैलत्रयं पचति । “यथा शुद्धचीकाथदुग्धाभ्यां तैलं द्वादशशरेण वा । सिद्धं मधुकाकारमयं तस्यैव घातव्यं तत्रुत ” इति ।

पदार्थसे पाक करना कहाहो तो प्रत्येकका परिमाण स्नेहसे चौगुना ले (कोई २ कहते हैं कि एकसे चारतक द्रवद्रव्यसे पाक करना कहाहो तो उनके समभागमें मिलाहुआ चौगुना परिमाण ग्रहणकरे) ॥ ३२ ॥

द्रवेणकेवलेनैवस्नेहपाकोभवेद्यदि ।

तत्राम्बुपिष्ठाकल्कः स्याद्रवंचात्रचतुर्गुणम् ३३ ॥

अर्थ—केवल द्रवद्रव्यसे स्नेहपाक करना कहाहो तो इस स्नेहमें जलमें पिसा हुआ कल्कसे और चौगुने जलसे पाक तैयार करे ॥ ३३ ॥

काथेनकेवलेनैवपाकोयत्रोरितः क्वचित् ।

काथ्यद्रव्यस्यकल्कोऽपितत्रस्नेहेप्रयुज्यते ॥ ३४ ॥

अर्थ—केवल काथसे स्नेहपाक करना कहाहो, तो इस काथ्यद्रव्यका कल्क यथा परिमाणसे स्नेहमें डाले ॥ ३४ ॥

कल्कहीनस्तुयःस्नेहःससाध्यःकेवलेद्रवे ॥ ३५ ॥

अर्थ—कल्कके बिना जिस स्नेहके पाक करनेकी विधि है, सो केवल द्रवद्रव्यसेही पाक करे ॥ ३५ ॥

पुष्पकल्कस्तुयःस्नेहस्तत्रतोयंचतुर्गुणम् ।

स्नेहात्स्नेहाष्टमांशन्तुपुष्पकल्कःप्रयुज्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—यदि स्नेह पुष्पकल्कसे पाककी विधि कहीहो, तो स्नेहमें चौगुना जल डाले । स्नेहका आठवां भाग कल्कदे ॥ ३६ ॥

स्नेदनिष्पत्तिरक्षणमाह ।

स्नेहकल्कोयदांगुल्यावर्त्तितोवर्त्तिवद्रवेत् ।

वन्हौशितेच्चनोश्चदस्तदासिद्धिर्विनिर्दिशेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ—स्नेहके बीचका कल्क (कण) अंगुलिसे पकानेपर

(७२) वैद्यकपरिभाषाप्रदीप ।

जब बत्तीकी समान होजाय, जब यह कल्क अभिमें डालने पर किसी प्रकारका शब्द न करे, तब जाने की स्नेहादिका पाक पूरा हो गया ॥ ३७ ॥

अन्यच्च ।

क्षितेकृशानौनकरोतिशब्दम्
नांगुष्ठलेपीविशदोपिनास्ति ॥
सम्बर्त्तितोवर्त्तिमुपैतिकल्को
निष्पत्तिरेपाघृततैलयोस्तु ॥ ३८ ॥

अर्थ—स्नेहका कल्क अभिमें डालने पर जो शब्द न होवै और कल्क अंगुलीमें लेप करने पर जो उंगलीमें लगे अर्थात् यदि बत्तीकी समान हो और अधिक कठिन कल्कका पाक न हो, तो स्नेहका पाक सिद्ध न जाने ॥ ३८ ॥

शब्दस्योपरमेप्राप्तेफेनस्योपरमेतथा ।
गन्धवर्णरसादीनांसम्पत्तौसिद्धिमादिशेत् ॥
फेनोऽतिमात्रतैलस्यशेषंघृतवदादिशेत् ॥ ३९ ॥

अर्थ—स्नेह पाकके समय वो एक प्रकारका होता है और भाग उठते हैं उन दोनोंके दूर होनेपर स्नेहमें जो जो वस्तु दीजाती हैं, उन २ वस्तुओंका भलीभांतिसे गन्ध, वर्ण और रसादि स्नेहमें ज्ञात होवै तब घृत और तैलादिके पाकको शेष हुआ जानना । तैल और घृत पाकके सिद्ध होनेमें विशेष पता यह है कि तैलका पाक तैयार होनेके समय तैलमें अत्यन्त झाग उठते हैं परन्तु घृतका पाक पूर्ण होनेके समय फेन नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥

अस्मिन्नवसरेतोयेक्षारसाध्यंघृतादिषु ॥ ४० ॥

फेनोदयस्यनिष्पात्तिर्नष्टदुग्धसमाकृतिः ॥

सएवतस्यपाकस्यकालोनेतरलक्षणम् ॥ ४१ ॥

अर्थ-जो क्षारसे घृतादिका पाक करना हो तो पाक तैयार होनेके समय नष्ट दुधके झागकी समान झाग टूटते हैं, अतः एव तभी पाकको तैयार हुआ जानकर नीचे उतार ले ॥ ४० ॥ ४१ ॥

स्नेहपाकस्त्रिधाप्रोक्तोमृदुर्मध्यःखरस्तथा ।

ईपत्त्वरसकल्कस्तुस्नेहपाकोमृदुर्भवेत् ॥ ४२ ॥

मध्यपाकस्यसिद्धिश्चकल्केनौरसकोमले ।

ईपत्कठिनकल्कस्यस्नेहपाकोभवेत्त्वरः ॥ ४३ ॥

तद्वृद्धेखरपाकःस्यादाहकृन्निप्रयोजनः ।

आमपाकश्चनिर्वीर्योवह्निमान्धकरोगुरुः ॥ ४४ ॥

अर्थ-मृदुपाक, मध्यपाक और खरपाक, यह तीन प्रकारका स्नेहका पाक है । जिस स्नेहका कल्क कुछेक रसयुक्त है तिसको मृदुपाक कहते हैं । जिसका कल्क नीरस और कोमल है तिसको मध्यपाक कहते हैं और जिसका कल्क कुछ एक कठिन है तिसको खरपाक कहते हैं । इस खरपाक-सेभी अधिक कड़ा पाकहो तो वह दाहजनक और निकम्मा होजाता है । आमपाक अर्थात् स्नेहमें जलहो तो वह वीर्यहीन मन्दाग्निका करनेवाला और भारी होता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

नस्त्यर्थस्त्यान्मृदुःपाकोमध्यमःसर्वकर्मसु ।

अभ्यङ्गार्थेखरःप्रोक्तोयुंज्यादेवयथोचितम् ४५ ॥

अर्थ-मृदुपाकका स्नेह नास लेंनेमें, मध्यपाकका स्नेह स्रव क्रियाओंमें और खरपाकका स्नेह मर्दनके काममें आता है ॥

अन्यच्च ।

मृदुर्नस्येखरोऽभ्यङ्गेवस्तौपानेचमध्यमः ॥४६॥

अर्थ—मृदुपाकका स्नेह, नास लैनेमें खरपाकका मलनेमें और मध्यपाकका स्नेह पिचकारी देनेमें और पीनेमें प्रयोग करे ॥ ४६ ॥

तुल्येकलकेचनिर्यासेभेषजानामृदुःस्मृतः ।

संयावइवनिर्यासोमध्योदर्वीविमुञ्चति ।

शीर्यमाणेतुनिर्यासेवध्यमानेखरःस्मृतः ॥४७॥

अर्थ—जो स्नेहका कल्क हत्तेमें चिपक जाय तो उसको मृदुपाक कहते हैं, जो कल्क पिट्टीकी समान मालूम होकर हत्तेसे अलग होजाय तो मध्यपाक और जो घातनादिसे कल्क कठिन जाना जाय, तब तिसको खरपाक कहा जाता है ॥४७॥

सर्वेषामिहद्रव्याणामध्यपाकःप्रशस्यते ।

वरम्पाकोमृदुःकार्यस्तथापिनखरोमतः ॥

किञ्चिद्दीर्यमृदुधत्तेतज्जहातिखरःपुनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—सब द्रव्योंका मध्य पाकही उत्तम है, मृदुपाकद्रव्य, अल्पवीर्ययुक्त है, खरपाकयुक्त द्रव्य कोई फल नहीं देता । मृदुपाक तो किया जा सकता है, परन्तु खरपाक करना कभी उचित नहीं, क्योंकि वह वीर्यहीन होजाता है ॥ ४८ ॥

अन्यत्पाकलक्षणमाह ।

वर्तिवत्स्नेहकल्कःस्यादंगुल्याचविवर्तितः ।

शब्दहीनोग्निनिक्षिप्तःस्नेहसिद्धौभवेत्तदा ॥ ४९ ॥

अर्थ—स्नेहका कल्क ऊंगलीपर चिपकानेसे जब वत्तीकी समान होवे और अग्निमें कल्कके डालनेसे जब किसी प्रकारका शब्द न हो तबही स्नेहादिका पाक सिद्ध हुआ जानै ॥४९॥

यदाफेनोद्गमस्तैलेफेनहीनस्तुसार्पपि ।

वर्णगन्धरसोत्पत्तौस्नेहसिद्धिस्तदाभवेत् ५० ॥

अर्थ—जब तेलमें बहुतायतसे झाग उठनें लगे और घृत फेन रहित होजाय और यथायोग्य रूपसे अर्थात् स्नेहमें जो वस्तु दीजाती हैं, तिनके रंग गन्ध और रसकी उत्पत्तिहो तब ही स्नेहका पाक सिद्ध हुआ जानें ॥ ५० ॥

घृततैलगुडादींश्चसाधयेन्नैकवासरे ।

कुर्वन्तिव्युपितास्त्वेतेविशेषाद्गुणसंचयम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—घी, तेल और गुड़ादिका पाक एक दिनमें पूर्ण नहीं करे । क्यों कि वासी करके पाक करना अत्यन्त फलदायक होता है ॥ ५१ ॥

अन्यच्च ।

घृततैलगुडादींश्चनैकाहादवतारयेत् ।

व्युपितास्तुप्रकुर्वन्तिविशेषेणगुणान्यतः ॥

केवलंत्रीहिजन्त्वङ्गकाथोव्युष्टस्तुदोषलः ॥ ५२ ॥

अर्थ—एक दिनमेंही घी, तेल और गुड़ादिका पाक तैयार नहीं करे, क्योंकि वासी करके पाक करनेसे अधिक फल होता है । केवल धान्यादि और प्राणियोंका मांस—काय वासी करनेसे दोषकारी हो जाता है ॥ ५२ ॥

गुटपाकोपलक्षणमाह ।

यदादर्वीप्रलेपःस्याद्यदावातन्तुलीभवेत् ।

तोयपूर्णंचपात्रेतुक्षिप्तोनप्लवतेगुडः ॥ ५३ ॥

क्षिप्तस्तुनिश्चलस्तिष्ठेत्पतितस्तुनशीर्यति ।

एपपाकोगुडादीनांसर्वेषांपरिकीर्तितः ॥ ५४ ॥

अर्थ-जब हतेसे चिपट जाय और सूतकी समान तार निकले (अर्थात् हतेके द्वारा ऊपरको उठानेपर सूतकी समान तार निकले) और जलः भरे वर्तनमें डालनेपर निश्चल रहै, फैल न जाय, तब गुडादिके पाकको सिद्ध हुआ जानै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

सुखमर्दःसुखरूपशोऽगन्धवर्णरसान्वितः ।

पीडितोभजतेमुद्रांगुडपाकमुपागतः ॥ ५५ ॥

अर्थ-मलनें और धूनेंसे चिकना मालूम हो और भली-भांति, गंध, वर्ण और रस गुड़में जाना जाय, हाथसे मलनेपर जब मुद्राकी समान हो जाय तब गुडका पाक सम्पन्न हुआ जाने ॥ ५५ ॥

गुडवद्गुगुलोःपाकोरसगन्धविशेषतः ॥ ५६ ॥

अर्थ-गूगलका पाकभी गुडके पाककी समान है, गुड और गूगलमें रस व गन्धकी अलगताके सिवाय और कुछभी भेद नहीं है ॥ ५६ ॥

श्रेष्ठमध्यमहीनेषुद्वादशांगचतुष्टयैः ।

मापकैर्गुगुलोर्मात्रां व्याधिर्वीक्ष्यप्रयोजयेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ-प्रबल अग्निवालेके लिये गूगलकी मात्रा १२ माषा (१॥ तोला) मध्यम अग्निवालेके लिये ८ माषा (१ तो०) हीन अग्निवालेके लिये ४ माषेकी मात्रा गूगलकी चलावल विचारके प्रयोग करे ॥ ५७ ॥

अथलोहशोधनादिपरिभाषामाह ।

(यदाहुस्त्रिविक्रमपादालौहमदीपे)

शुद्धयर्थं त्रिफलालोहात्कर्तव्या द्विगुणा सदा ।

चतुर्गुणफलतोयमर्द्धभागावशेषितम् ॥

एषएवविधिर्नित्यंक्षालनेऽपिप्रशस्यते ॥ ५८ ॥

अर्थ—लोहेको शुद्ध करनेके लिये लोहेके वजनसे दूना त्रिफला ग्रहण करके चौगुने जलमें पकावै, आधा रहनेपर उतारले, तिससे रोज लोहेको धोवै ॥ ५८ ॥

वधार्थत्रिफलाग्राह्यालोहान्नित्यंचतुर्गुणा ।

तोयमष्टगुणंतत्रचतुर्भागावशेषितम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—लोहेको मारना हो तो लोहेसे चौगुना त्रिफला ग्रहण करके आठ गुणे जलमें पकावै, जब चौथाई रह जाय तब उतार ले ॥ ५९ ॥

भानुपाकार्थमिच्छन्तित्रिफलामयसासमाम् ।

सलिलंद्विगुणंतत्रचतुर्भागावशेषितम् ॥ ६० ॥

अर्थ—भानुपाकके लिये लोहेकी बराबर त्रिफला ग्रहण करके तिसको दूने जलमें पकावै जब चौथाई रह जाय तब उतार ले ॥ ६० ॥

पाच्यद्रव्यात्तुपाकार्थत्रिफलात्रिगुणेरिता ।

स्यात्पोडशगुणंतोयमष्टभागावशेषितम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—लोहपाक करना हो तो लोहेसे तिगुना त्रिफला लेकर १६ गुण जलके साथ पकावै, जब आठवां अंश रह जाय तब उतार ले ॥ ६१ ॥

अन्यानि यानि वस्तूनि योक्तव्यानि पुटादिषु ।

तानिलोहसमान्याहुर्जलंप्राग्वेकीर्तितम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—लोहेके पुटादिमें और वस्तुएँ जो दीजाती हैं तिनको लोहेके वजनकी बराबर ग्रहण करे; जलका परिमाण पहले कहा गया ॥ ६२ ॥

लभ्यतेस्वरसोयेपातिपांक्ताथोऽत्रनेष्यते ।

त्रिफलाव्यतिरेकेणमतमेतत्पतञ्जलेः ॥ ६३ ॥

अर्थ—पतंजलिका मत-जिन द्रव्योंका स्वरस मिलता है जिनका काथ ग्रहण नहीं करे; परन्तु त्रिफलाका स्वरस ग्रहण करना ठीक नहीं, इसका काथही ग्रहण करे ॥ ६३ ॥

एषएवविधिर्नित्यंक्षालनेऽपिप्रशस्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—लोहेके धोनेमें प्रतिदिन ऐसा नियमही श्रेष्ठ है ॥ ६४ ॥

लोहवत्रिफलाव्योमित्रिफलावत्पयोमतम् ।

प्राक्कीर्तितंजलञ्चात्रमृदुमध्यादिभेदतः ॥ ६५ ॥

अर्थ—लोहेके वजनके अनुसार त्रिफला और त्रिफलाके वजनके अनुसार जल डाले । मृदु, मध्य और कठिनके भेदसे जलका परिमाण पहलेही कहागया है ॥ ६५ ॥

मृदुमध्यकठोरत्वात्काथ्यद्रव्यंत्रिधामतम् ।

काथ्यद्रव्यानुसारेणदेयंस्थाप्यंजलंत्रिधा ॥ ६६ ॥

अर्थ—मृदु, मध्य और कठिन भेदसे काथके द्रव्य तीन प्रकारके हैं । वस काथ्यद्रव्यके अनुसार जलका परिमाण भी तीनप्रकारका है ॥ ६६ ॥

पतञ्जलिश्चाह ।

(सामान्यपरिभाषाणालौहपारमार्थ्यम्) ।

द्विगुणांत्रिफलांलोहात्पचेत्पोडिशिकेजले ॥

अष्टभागावशिष्टन्तुमारणेजलमिष्यते ॥ ६७ ॥

अर्थ—लोहेके वजनसे दूना त्रिफला ग्रहण करके १६ गुण जलमें त्रिफलाको पकावै, जब आठवां हिस्सा बचजाय तब उतारकर लोहा मारनेके लिये उसका प्रयोगकरे ॥ ६७ ॥

समाचत्रिफलाग्राह्याजलंचाष्टगुणंतथा ।

वधार्थेस्थापयेत्तोयंतस्यार्द्धवस्त्रशोधितम् ॥ ६८ ॥

अर्थ-लोहेको मारनेके लिये लोहेके बजनकी बराबर त्रि-
फला ग्रहण करके आठगुणे जलमें पाक करे जब आधा रहै
तब दतारकर कपड़ेसे छानले ॥ ६८ ॥

वधार्थेनसमग्राह्यंपाकार्थञ्चसमंफलम् ।

अष्टभागावशिष्टंचपाकार्थंजलमिष्यते ॥

एवंजलंफलंप्रोक्तंयथासंख्येनयोजयेत् ॥ ६९ ॥

अर्थ-लोहेको मारनेके लिये और लोहपाकके लिये लोहे-
की बराबर त्रिफला ले। पाककेलिये काथ हो तो जब आठवां
भागरहे तब दतारले । इस प्रकारके विधानसे जल और त्रि-
फलाका क्रमानुसार प्रयोग करे ॥ ६९ ॥

अथ लोहपाकलक्षणमाह ।

तदुक्तं पतंजलिना

तावल्लोहंपचेद्द्वयोयावद्वस्त्रेणगालितम् ।

समुद्रंजायतेव्यक्तंननिःसरतिसन्धिभिः ॥ ७० ॥

अर्थ-कपड़ेसे छाननेपर जो लोहा समस्त वस्त्रको ढककर
कपड़ेमें लगा रहै । नीचे (वस्त्रके बाहरे) न गिरे तो जाने कि
पाक सिद्ध नहीं हुआ अर्थात् जबतक यह समस्त लक्षण दूर
नहो जाय तबतक लोहपाक करे ।

अन्यच्च ।

अंगुलिभ्यांदृढंघृष्टंयदाचूर्णत्वमागतम् ।

तदासिद्धंविजानीयाल्लोहंलोहविदांवरः ॥ ७१ ॥

अर्थ-जब अंगुलिकरके जोरसे मसलनेपर चूर्ण होजाय,
तब चतुरवैद्य लोहेके पाकको सिद्ध हुआ जानै ॥ ७१ ॥

अन्यत्र ।

अंजनाभंगनस्निग्धंशुष्णभूतमलेपनम् ।

अक्लिन्नमम्भसिक्षितंसम्यक्पक्वस्यलक्षणम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—अंजनकी समान कान्तिवाला, गाढ़ा, चिकना, शुष्ण (महीनघूर्ण) और उंगलीमें कुछेक लगजाय, जलमें डालनेसे तत्काल कीचड़की समान न होवै, तो लोहेके पाकको सिद्धहुआ जानें ॥ ७२ ॥

मन्दमादुरथोलोहमलब्धाखिललक्षणम् ॥ ७३ ॥

अर्थ—पहले कहे हुए सबलक्षण लोहेमें न हों तो उसकी हीनपाक जानें ॥ ७३ ॥

अतिपाकेनतज्ज्ञेयंखरमुज्झितलक्षणम् ॥ ७४ ॥

अर्थ—अत्यन्तपाक होनेपर पहलेकहे हुए समस्त लक्षणोंको लांघकर लोहा खरभावको प्राप्त होजाता है ।

अमोघतन्त्रेचोक्तम् ।

पाकस्तुत्रिविधःप्रोक्तोमृदुमध्यमतीक्ष्णकः ।

त्रैविध्यात्सर्वधातूनांपित्तानिलकफात्मनाम् ॥ ७५ ॥

अर्थ—अमोघतन्त्रमें कहाहै कि पित्त, वायु और कफात्मक भेदसे सबप्रकारकी धातुओंका पाक तीनप्रकारका है । यथाः—मृदुपाक, मध्यपाक और खरपाक ॥ ७५ ॥

दर्वांमाश्लिष्यतेयत्तत्स्वैरंस्खलतिवानवा ।

मृदुपाकंविजानीयात्पित्तेतद्भीक्ष्ययोजयेत् ॥ ७६ ॥

अर्थ—जो लोहा हठमें लगजाय, कभी खसके कभी नहीं खसके; तिसको मृदुपाक कहते हैं। बुद्धिमान वैद्य विचारके साथ इसको पित्तके कोषमें प्रयोगकरे ॥ ७६ ॥

सित्तापुंजोपमंयत्तुमुपिकेनसमन्वितम् ।

तदयःखरपाकःस्याच्छेप्स्येवप्रकीर्तितः ॥

एकैकगुणयोगित्वात्रतदिच्छन्तितद्विदः ॥ ७७ ॥

सर्वप्रकृतिसेव्यत्वान्मध्यमं बहुपूजितम् ।

गुडादिप्रविशेद्यत्रतत्रपाकोऽस्यमुद्रया ॥ ७८ ॥

अर्थ—पाकके वर्तनमें त्रिपटकर लोहा रेतीली भूमिकी समान कठिनभाव धारणकरे तो इसको खरपाक कहते हैं, श्लेष्माके कोषमें इसका प्रयोग किया जा सकता है । एक २ प्रकारके पाकमें एक २ गुणके दिखाई देनेसे चतुर वैद्यगण तिसकी प्रशंसाके योग्य नहीं समझते । मध्य पाकके लोहे-को सब स्वभाववाले सेवन करसकते हैं, और यह अत्यन्त उपकारी है । गुडके साथ जिस लोहेका पाक किया जाय और वह मलनेसे मुद्राकी समान हो तो पाकको तैयार हुआ जानें ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ भावनाविधिर्दिल्लप्यते ।

द्रवेण्यावताद्रव्यमेकीभूयार्द्रतां त्रजेत् ।

तावत्प्रमाणं कर्तव्यं भिषग्भिर्भावनाविधौ ॥ ७९ ॥

अर्थ—चिन्तनीय द्रव्य जबतक द्रवद्रव्य (भावित द्रव्य) के साथ एक (मिश्रित) नहो, और गीले नहीं तबतकही भावित द्रव्यसे मर्दनकरें ॥ ७९ ॥

दिवादिवातपेशुष्करात्रौरात्रौ च वासयेत् ।

शुष्कं चूर्णीकृतं द्रव्यं सप्ताहं भावनाविधिः ॥ ८० ॥

अर्थ—चिन्तनीय द्रव्य भावना देकर दिनको धूपमें सुखावै, रात्रिमें वासीकरे, और तिसके दूसरे दिन सूक्ष्मचूर्ण करके फिर भावना दो इस प्रकारसे एक सप्ताहतक भावनादेना उचित है ॥ ८० ॥

१ अत्र जलं पाकायैमष्टगुणं देयं अन्यानन्तरदर्शनात् । "भाव्यद्रव्यसमं घ्राप्यं घ्राप्यादष्टगुणं जलम्" इति पञ्चाद्विहितमेव । केचिन्नु अनुक्त-जलपरिमाणे चतुर्गुणं जलं दत्वा द्रव्यत्वादिविदस्त्वष्टांशशेषमुदन्ति ।

ग्रन्थान्तरेच ।

भावद्रव्यसमंकाथ्यंकाथ्यादष्टगुणंजलम् ।

अष्टांशशेषितःकाथोभाव्यानांतेनभावना ॥ ८१ ॥

अर्थ—दूसरे ग्रंथमें कहाहै कि भावना देनेयोग्य द्रव्य-
की समान काथ्य द्रव्य ग्रहण करके, तिस्से आठ गुणे
जलमें पकावै; आठवां अंश रहजाय तब उतार कर तिस्से
भावनादे ॥ ८१ ॥

क्षारोदकमाह ।

पानीयोयस्तुगुल्मादौतद्वारानेकविंशतिम् ।

स्त्रावयेत्पट्टगुणेतोयेकेचिदाहुश्चतुर्गुणे' ॥ ८२ ॥

अर्थ—गुल्मादि रोगमें जो क्षार-जल दियाजाता है,
इसको बनानाहो तो ६ गुणे जलसे २१ बार चुआले ॥ ८२ ॥

द्विरुक्तद्रव्यग्रहणम् ।

घृततैलादियोगेचयद्रव्यंपुनरुच्यते ।

ज्ञातव्यंतदिहाचार्यैर्भागतोद्विगुणेनहि ॥

‘आदिशब्देनचूर्णवटिकादिलेहप्रभृतिषुज्ञेयमिति ॥’ ८३

अर्थ—धी, तेल, वटिका और चूर्णादिके योगमें जो द्रव्य
दोबार कहाहै, उस द्रव्यके दो भागदेने चाहिये ॥ ८३ ॥

चूर्णस्य पाकनिषेधमाह ।

प्रायोऽनपाकचूर्णानांभूरिचूर्णस्यतेनहि ।

१ क्षारात्पट्टगुणं जलं दत्वा घर्षेण दोलायंत्रं विधाय तदधः पात्रं
पातयित्वा क्षारोदकं ग्राह्यम् एवमेकविंशतिवारं पुनः २ स्त्रावयित्वा
ग्राह्यम्।अथवा केचिदाहुः क्षाराच्चतुर्गुणं जलं दत्वा चतुर्यावशिष्टे स्त्राव-
यित्वा तजलं ग्राह्यम् ।

क्षारजलके तैयार करनेके नियम । क्षार (खार) और जल
(ऊपर कहेहुए परिमाणके अनुसार) दोनोंको इकट्ठाकर दोलायंत्रमें
रखके नीचेके पात्रमें चुमावै, ऐसेही २१ बार चुमाकर उस जलको ग्रह-
ण करे । कोई २ कहते हैं कि क्षारको चौगुने जलसे पाककरे चौपाई
जलरहनेपर उतार कर चुमावे फिर उस जलको ग्रहण करे ॥

आसन्नपाकेप्रक्षेपःस्वल्पस्यपाकमागते' ॥ ८४ ॥

अर्थ—चूर्णका पाक करना कर्त्तव्य नहीं है लड्डू आदि बनाने हों तो चीनी अथवा गुडका रसकरके पात्र अग्निपरसे उतारे, उसको चूर्ण प्रक्षेप देकर भलीभांतिसे घोलकर लड्डू बनावें । चूर्ण अधिक होतो चीनी या गुडका रसपाक तैयार होनेके कुछ काल पहले देवें, चूर्ण अल्प (थोड़ा) हो तो उतार कर कुछेक गरम रहते हुए प्रक्षेपदेवें ॥ २४ ॥

चूर्णेचूर्णसमोज्ञेयोमोदकेद्विगुणोगुडः ॥ ८५ ॥

अर्थ—औषधिके चूर्णमें, चूर्णकी बराबर गुड, और मोदकमें औषधिसे दूना गुड डालें ॥ ८५ ॥

संख्यापलानांशतशःपलप्रश्रूयतेयतः ।

तदाचाकृतिमानेनतेपान्तुग्रहणंविदुः ॥ ८६ ॥

अर्थ—जहांपर एक शतपल और पल संख्या कही है, वहां पर जिस द्रव्यकी जैसी संख्या है, उस द्रव्यको उतनाही ग्रहण करे ॥ ८६ ॥

अथातुपानविधिमाह ।

स्थिरतांगतमक्लिन्नमन्नमद्रव्यपायिनः ।

१ प्रायः इति प्रचुर्येण प्राचुरार्थ इति आसन्नपाक इति उपस्थित-पाके ननु पाकमापन्ने तथा सति प्रचुरचूर्णानां प्रवेशो न स्यादित्यर्थः । स्वल्पस्य चूर्णस्य पाकान्ते कटुष्णदशार्था प्रक्षेप इति शेषः ।

२ भाकृतिमानेनेति यद्वत्तुल्यसंख्या येषां तथा तेषां द्रव्याणां ग्रहणं विदुः । एतेन मृदादीनां द्वैगुण्यं नानुष्ठेयम् । “पलोल्लेखागते माने न द्वैगुण्यमिदृश्यते ।” इति वचनात् । अर्थात् मृदु आदि कोई द्रव्य-हो दूना ग्रहण न करे । यथा,—“ पलोल्लेखागते माने ” इत्यादि वचनसे पहले भी कहा गया है पल बताकर जहां मान कहा गया है उस स्थानमें दूना ग्रहण न करे ।

भवेत्तुवाधाजनकमनुपानमतःपिवेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ—“ आवाध्यमिति आसम्यक् प्रकारेण बाधक्यं पीडा जनकमित्यर्थः ” आहारके संग द्रवद्रव्य (जलादि) को न पान करनेसे पेटमेंका खायाहुआ द्रव्य सूखकर विविध प्रकारके दोषवाला हो पीडादायक होता है। इस कारण अनुपानके साथ आहारादि करना चाहिये ॥ ८७ ॥

यथाजलागतंतैलक्षणेनैवप्रसर्पति ।

तथाभैषज्यमङ्गेषुप्रसर्पत्यनुपानतः ॥ ८८ ॥

अर्थ—जिस प्रकार जलमें तेल डालनेसे, एक क्षणभरमें ही तेल जलमें फैल जाता है, तैसेही औषध सेवन करनेके पीछे अनुपानका सेवन करनेसे अति थोड़े कालमेंही औषधिका गुण सारे शरीरमें फैल जाता है ॥ ८८ ॥

रोचनंवृंहणंवृष्यंदोषघ्नंवातभेदनम् ।

तर्प्पणंमार्दवकरंश्रमक्लमहरंपरम् ॥ ८९ ॥

दीपनंदोषशमनंपिपासाच्छेदनंपरम् ।

रसवर्णकरश्चापिअनुपानंसदोच्यते ॥ ९० ॥

अर्थ—जो अनुपान औषधिके योग्यहो वह रुचिदायक, स्थूलता करनेवाला, शुक्रका घटानेवाला, दोषका नाश करनेवाला, वायुका अनुलोमन करनेवाला, तृप्तिकारी, देहको कमनीय करनेवाला, श्रान्ति और क्लान्तिका नाशक, पातादिदोषनाशकारी, श्वासका नाश करनेवाला, रसवर्द्धक और वर्णप्रसादक है ॥ ९० ॥

वातापिभक्षितोयेनअगस्त्येनद्विजोत्तम ।

अनुपानंकृतंतेनकाकथासर्वदेहिनाम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजी मुनिने जिसप्रकार वा-

तापि राक्षसको भक्षण करके पचा डाला था, वैसेही आहार अनुपानके साथ खानेसे जीर्ण हो जाता है ॥ ९१ ॥

अनुपानं करोत्यूर्जातृप्तिव्याप्तिदृढांगताम् ।

अन्नसंघातशैथिल्यविकृतिर्जातानिच ॥ ९२ ॥

अर्थ—“व्याप्ति ” शरीरव्यापिनीम् । “ विकृतिः ” विकृ-
न्नता इत्यर्थः । अनुपान—तेजकारी, तृप्तिकारी, सर्वशरीर-
व्यापक, शरीरको दृढ करनेवाला और भक्ष्यद्रव्यको शिथिल
व क्लिन्न करके पचा देता है ॥ ९२ ॥

स्निग्धोष्णं मारुतेश्स्तपित्तमधुरशीतलम् ।

कफेनुपानं रूक्षोष्णं क्षये मांसरसं पयः ॥ ९३ ॥

अर्थ—वायुके कोपमें चिकने और गरमद्रव्य, पित्तके
कोपमें मधुर और शीतलद्रव्य और कफके कोपमें रूखे व गरम
द्रव्यका अनुपान देना ठीक है । क्षयरोगमें मांसरस वा
दूधका अनुपान दे ॥ ९३ ॥

उष्णोदकानुपानश्च स्नेहानामथ शस्यते ।

ऋते भ्रष्टातकस्नेहात्तत्र तोयं सुशीतलम् ॥ ९४ ॥

अर्थ—सब प्रकारके स्नेह (घृतादि) पीनेकी पीछे गरम
जलका अनुपान देना ठीक है, परन्तु भिलावेका स्नेह पीनेके
पीछे शीतल जलका अनुपान करे ॥ ९४ ॥

अन्यञ्च ।

भ्रष्टाततौ वरे स्नेहे शीतमेव जलं पिबेत् ।

जलमुष्णं घृते पेयं यूपलेहेन शस्यते ॥

वसामज्जिन्नमण्डः स्यात्सर्वपूष्णमथांबुवा ॥ ९५ ॥

अर्थ—भिलावे और तौवरको स्नेह सेवनकरके शी-

१ पत्रैस्तु केशराकारैः कल्लायसदृशैः फलैः । घृतास्तु घरको नाम
पश्चिमाणं वतीरजः ॥ राजनि० भरद्वाजका अर्थ करता है ।

तल जलपान करे, घीसेवनके पीछे गरम जलका पान और तेलपान करके जूपको पियै । चरबी, मज्जा और अन्नमांड भक्षण करनेके पीछे गरम जलपान करे, सब द्रव्य भक्षण करनेके अन्तमेंही गरमजल पीना ठीकहै ॥ ९५ ॥

अन्यच्च ।

शीतोष्णतोयासवमद्यमुद्र-

फलाम्बुधान्याम्लपयोरसानाम् ॥

यस्यानुपानन्तुभवेद्धितंयत् ।

तस्मैप्रदेयंत्विहमात्रयातत् ॥ ९६ ॥

अर्थ-शीतलजल, गरमजल, आसव (मद्यविशेष) मद्य और मृंगादिका जूस नींबू आदि, अम्लरस, कांजी, दूध और मांसरस, इनमेंसे जो अनुपान जिसके लिये हितकारीहो,तैसाही अनुपान योग्य मात्रासे तिसे पीनेको दे९६॥

अन्यच्च ।

यूपोमांसरसोवापिशालिमुद्रादिभोजनम् ।

मांसादीनांचानुपानंधान्याम्लंदधिमस्तुवा ॥ ९७ ॥

अर्थ-सड़ीके चावल और मृंगादि खानेवालोंके लिये जूस और मांसरस हितकारी है । मांसादि भोजन करनेके पीछे कांजी और दहीके माथको पीना हितकारी है ॥ ९७ ॥

अथानुपानमाचामाह ।

अनुपानंप्रयोक्तव्यंव्याधौश्लेष्मभवेपलम् ।

पलद्वयन्त्वनिलजेपित्तजेतुपलत्रयम् ॥

गुडशौद्रसितादीनांपलार्द्धचविशेषतः ॥

“ पलमत्रसौश्रुतम् ” ॥ ९८ ॥

अर्थ-श्लेष्मासे उत्पन्न हुए रोगमें एक पल (८ तो०) यायु-

के रोगमें २ पल और पित्तसे उत्पन्न हुए रोगमें तीन पल अनु-
पान देना चाहिये, परन्तु गुड, शहद और चीनी इनका अनु-
पान देनाहो, तो पहले कहेकी अपेक्षा आधी मात्रादे ॥ ९८ ॥

दीप्ताग्रयोमहाकायाःस्नेहसात्म्यमहाबलाः ।

विसर्पेन्मादगुल्मार्ताःसर्पद्रंष्ट्रविपादिताः ॥

ज्येष्ठांमात्रांपिवेयुस्तेपलान्यष्टौविशेषतः ॥ ९९ ॥

अर्थ—जिसकी आग्नि दीप्त है बड़े शरीरवाला स्नेहसेभी
और अत्यन्त बलवान पुरुष और विसर्प (पाण्डुरोग) दन्माद
गुल्मरोगवाला, सांपसे काटा हुआ, विष खानेसे अर्दित हुआ
पूर्णमात्रा (८ पल) का अनुपान सेवनकरे ॥ ९९ ॥

अथ लोहानुपानमाह ।

माहिपंगव्यमाजश्चपयोग्राह्यंत्रिधायसि ।

माहिपंभस्मकेदेयमाजंक्षीरंप्पुनर्ममत्तम् ॥ १०० ॥

कोष्ठदोषेकफेश्वासेकासेचापिनवज्वरे ।

गव्यमन्यत्रसर्वत्रसमवारिप्रसाधितम् ॥ १०१ ॥

अर्थ—भैंसका दूध, गायका दूध और छागदूध यह तीन
प्रकारके दूध लोहेके अनुपानमें प्रयोग करने चाहिये । ति-
समें भस्मकरोग (यह ऐसा रोग है कि चाहें जितना खाओ
भगर भूख बनी रहै) में लोहेका प्रयोग करनाहो तो भैं-
सके दूधका अनुपानदे । कोष्ठदोष, कफकोष, श्वास और
खांसीके रोगमें और नवज्वरमें छाग (चकरी) दूधका अनु-
पानदे । इसके सिवाय सब रोगोंमें गायके दूधका अनुपानदे ।
यह तीनों प्रकारके दूध बराबर जलके साथ औटावै । जब
केवल दूध रह जावे तो रतारके अनुपानमें प्रयोग
करे १०० ॥ १०१ ॥

सर्वत्रगव्यमेवेतिमतमाहपतंजलिः ।

अनुपानं प्रयोक्तव्यं लौहात्पाष्टिगुणं पयः ॥ १०२ ॥

यदा तु वर्द्धितं क्षीरं तदा र्द्धं भोजने पिबेत् ।

दद्यात्संशमने तस्य योऽत्यर्थं क्षीणपावकः १०३ ॥

अर्थ—पतञ्जलि कहते हैं कि सबही कहीं गायका दूध प्रयोग करे । लोहेके वजनसे ६० गुण दूधका अनुपान करे जब दूधकी मात्रा अधिक (लोहेकी मात्रा के अनुसार) होवै, तो पहले जितना दूधका वजन कहा है, तिसके सिवाय औरभी दूध भोजनके साथ सेवन करे । क्षीणामिवाला भोजनकी बराबर व्यवहार करे ॥ १०३ ॥

अथानुपानविशेषमाह ।

अनुपानं हिमं वारियवगोधूमयोर्हितम् ।

दधिमन्ते विपेक्षौ द्रेऽनुष्णपित्तामये पिच ॥ १०४ ॥

ऊर्ध्वजनुगदेश्चासकासोरः क्षतपीनसे ।

गीतभाष्यप्रसाहेषु स्वरभेदेन तद्धितम् ॥ १०५ ॥

नपि वेच्छा सकासात्तौ रोगे चाप्यूर्ध्वजनुगे ।

क्षतोरस्कः प्रसेकीचयस्य चोपहतः स्वरः ॥ १०६ ॥

अर्थ—जौ और गेळुं भोजन करनेके अन्तमें, विषदोषमें, शहद पीनेके पीछे और पित्तरोगमें शीतलजलका पीना हितकारी है; परन्तु हंसलीके ऊपरके रोगमें, आस व खांसीके रोगमें, पेटघावके रोगमें, पीनसरोगमें, गीत और वाक्य कहकर थकेहुओंके लिये, स्वरभंगरोगमें शीतलजल हितकारी नहीं है । अतएव ऐसीको शीतलजलका अनुपान न दे ॥ १०४ । १०५ । १०६ ॥

अथशिशोर्भेषजपरिमाणमाह ।

प्रथमेमासिजातस्यशिशोर्भेषजरक्तिका ।

अवलेह्यातुकर्तव्यामधुक्षीरसिताघृतैः ॥

एकैकावर्द्धयेत्तावद्यावत्सम्बत्सरोभवेत् ॥ १०७ ॥

अर्थ-एक मासके बालकको एक रती औषध मधु, दूध, चीनी और घृत इनमेंसे चाहें जिसका अवलेह बनाकर सेवन करावै । फिर एक वर्षकी उमरतक प्रतिमासमें एक २ रती करके औषधिकी मात्रा बढ़ावै । एक वर्ष पूर्ण हो-जानेपर बारह रती औषधिकी मात्राका प्रयोग करना चाहिये ॥ १०७ ॥

तदूर्ध्वमापवृद्धिःस्याद्यावदाषोडशाब्दिकः ।

ततस्तुसप्ततियावत्कर्पमात्रांप्रयोजयेत् ॥

एवमेवविभागोयंतदूर्ध्वबालवत्क्रिया ॥ १०८ ॥

अर्थ-एक वर्षसे लेकर १६ वर्षतक प्रत्येक वत्सरमें एक २ मापा करके औषधिकी मात्रा बढ़ावै । फिर सोलह वर्षके पीछे सत्तरवर्षतक एक कर्प अर्थात् २ तो०मात्रासे औषधिका प्रयोग करे । इसप्रकार विधिके अनुसार मात्राका विभाग करले । फिर सत्तरवर्षके उपर सारी जिन्दगीतक बालककी समान औषधिकी मात्राका प्रयोग करे ॥ १०८ ॥

१ जातस्य शिशोर्बालकस्य प्रथमे मासि भेषजस्य रक्तिकामात्रा मध्वादिभिर्लेहुं दातव्या, प्रथममासादारभ्य द्वादशमासपर्यन्तं मासं मासं प्रति रक्तिकैका वृद्धिः कार्या नात्र दशरक्तिकपरिमाणमापकं विभागम् । किन्तु सम्बत्सरपूर्णार्थं द्वादशरक्तिका मात्रा देयेति भावः ।

२ तदूर्ध्वमिति द्वादशमाषादूर्ध्वं तेन द्वितीयवर्षेप्रथममासादा-रभ्य षोडशवर्षपर्यन्तम् मापकवृद्ध्या कर्षणं पूर्णं कार्यम् । ततः षोडशवर्षात् सप्ततिं यावत् तावदेव कर्षणैव व्यवहारः ॥ तदूर्ध्वं सप्त-तेः परं यावज्जीवनपर्यन्तं बालवत् मात्रा कार्येति शेषः ॥

अन्येष्याहुः ।

रक्तिमारभ्यकर्पन्तुमानं बालगदेमतम् ।

कर्पादौ तु जलश्रुत्या काथ्यस्य कार्पिको मतः ॥ १०९ ॥

“कर्पादाविति प्रागुक्तं परिभाषया ।

कर्पादौ तु पल्यावद्वात्पोडाशिकम्

जलमित्याख्यायेति शेषः ”

अर्थ—बालकको जो औषधि दीजाती है उसकी मात्रा एक रतीसे लेकर एककर्प (२ तो०) तक है । काथका प्रयोग करना हो तो काथ्यद्रव्य एककर्प ग्रहण करके पहले कहे हुए वचनके अनुसार १६ गुण जल डाले और काथ बनाकर प्रयोग करे ॥ १०९ ॥

यस्तु स्यात्क्षीरपोवालः कपायं पातुमक्षमः ।

तदाभिपक्वकुमारस्य तस्य धात्रीञ्च पाययेत् ॥ ११० ॥

अर्थ—जो दूधका पीनेवाला बालक काथको न पीसके तो जिसका दूध यह बालक पीताहो, उसको यह काथ पान करावे ॥ ११० ॥

ये गदानां च ये योगाः प्रोक्ताः स्वेस्वे चिकित्सिते ।

ते पांकलकेन संलितौ कुमारं पाययेत्स्तनौ ॥ १११ ॥

अर्थ—चिकित्सास्थानमें जिस २ रोगका जो जो योग कहा है, बालकको रोग हो तो उसी २ योगका फल्क छाई (बालक जिसका दूध पीताहै) के दोनों स्तनोंमें लेप करके बालकको स्तन पिलावे ॥ १११ ॥

त्रिविधाः कथिता बालाः क्षीरान्नोभयवर्त्तिनः ।

स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां व्याधिसम्भवः ११२

“वालास्तु त्रिविधा भवन्ति, क्षीरवर्ती, अन्नवर्ती, उ-
भयवर्ती च । उभयवर्तीति क्षीरान्नाभ्यां द्वाभ्यां वर्तनं ये-
षामिति ॥ ”

अर्थ-तीनप्रकारके बालकहैं, दूधपीनेवाला, अन्नखानेवाला,
दूध और अन्न दोनोंका खानेवाला। शुद्ध दूध और अन्नसे बालक
निरोग रहताहै, दूषित दूध व अन्नसे व्याधिग्रस्त होजाताहै ११२
अथभैषज्यभक्षणकालमाह ।

भैषज्यकालोभक्तादौमध्येपश्चान्मुहुर्मुहुः ।

सामुद्रंभक्तसंयुक्तं ग्रासे ग्रासान्तरेऽप्यथा ॥ ११३ ॥

अर्थ-औषधि भक्षण करनेके काल आठ प्रकारकेहैं-भो-
जनके पहिले, मध्यमें, अन्तमें और वारम्बार, सामुद्र (भो-
जनसे पहिले और पीछे), भक्तसंयुक्त, ग्रासमें और दूसरे
ग्रासमें यह आठ विधिहैं ॥ ११३ ॥

अपानेविगुणे पूर्वसमाने मध्यभोजने ।

व्यानेतु प्रातरशनमुदाने भोजनोत्तरम् ॥ ११४ ॥

वायौ प्राणे प्रदुष्टे तु ग्रासे ग्रासान्तरेऽप्यते ।

श्वासकासपिपासासुतत्तु कार्यं मुहुर्मुहुः ॥ ११५ ॥

सामुद्रं हि किनेदं यलघुना त्रेन संयुतम् ।

संभुज्यं त्वौषधं भक्षैर्विचित्रैरुचौहितम् ॥ ११६ ॥

“ सामुद्रमिति ” सामुद्रं भेषजं

विद्यादन्नस्याद्यवसानयोरिति ॥

अर्थ-अपानवायु कुपितहो तो भोजनसे पहले, समान-
वायु कुपितहो तो भोजनके मध्यमें, व्यानवायु कुपितहो तो
प्रातःकालमें, उदानवायु कुपितहो तो भोजनके पीछे, प्राण-

वायु कुपितहो तो आसमें और दूसरे आसमें औषधिका प्रयोग करे । दमा, सांसी और तृष्णारोगमें बारम्बार हिचकीरोगमें लघुद्रव्यके साथ भोजनसे पहले और पीछे और अरुचिरोगमें विविधप्रकारके श्रेष्ठ स्वाद्यद्रव्योंके साथ औषधिका प्रयोग करे ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

अन्येत्वाहुः ।

अभक्तं पूर्वभक्तं च मध्यभक्तं सभक्तकम् ।

भक्तोपरिष्ठात्सामुद्रं भक्तस्यैवान्तरेऽपि च ॥ ११७ ॥

आसेआसान्तरेचैवमुहुर्मुहुरिति स्मृतः ।

कालादशैते धीमद्भिरौषधस्य समासतः ॥ ११८ ॥

अर्थ—अभक्त, पूर्वभक्त, मध्यभक्त, सभक्तक, पश्चाद्भक्त, सामुद्र, भक्तान्तर, आसमें, आसान्तरमें और बारम्बार-संक्षेपसे औषधि भक्षण करनेके यह दश काल बुद्धिमान् लोगोंने कहेहैं ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

बलिनो महतो व्याधेरभुक्ते भेषजं हितम् ।

सर्वव्याधिहरं पथ्यं पूर्वभक्तं महीषधम् ॥ ११९ ॥

मध्यकायगतात्रोगान्मध्येभक्तं निहन्ति च ।

सभक्तं सुकुमाराणां बालानामौषधं द्विषाम् ॥ १२० ॥

भक्तोपरिष्ठात्सुस्थश्च ऊर्ध्वं जघ्नुर्विकारिणाम् ।

सम्बन्धो वर्चसां मुद्रं दीप्ताग्निबलिनां हितम् ॥ १२१ ॥

भक्तयोरन्तरे ज्ञेयं भोजनद्वयमध्यतः ।

तच्च नित्यं प्रयुज्जीत मध्यदेहविकारिणाम् ॥ १२२ ॥

आसेआसेकृताग्नीनां व्याशक्तिधियामपि ।

ग्रासान्तरोहितं विद्यात्कुष्ठमेहविकारिणाम् ॥

श्वासकासपिपासानांतत्तुकार्यमुहुर्मुहुः ॥ २३ ॥

अर्थ—बलवान् और अत्यन्त बड़ी व्याधिमें अभक्त औषधि हितकारी है पूर्वभक्त औषधि सर्व व्याधिनाशक, मध्यभक्त औषधि शरीरके भीतरे घुसेहुए रोगका नाश करनेवाली सुकुमार बालक और दवासे विरोधकारियोंके लिये समस्त औषधि सुस्थ शरीरवाले और ऊर्द्धजन्तुगत रोगियोंके लिये पश्चाद्भक्त औषधि हितकारी है। कब्जवाले रोगीके, दीप्तअग्निवाले और बलवान् पुरुषोंके लिये सामुद्र (भोजनके आदि और अन्तमें) सेवित औषधि हितकारी है। भोजनके मध्यमें दोवार जो औषधि सेवनकीजाती है तिसको भक्तान्तर औषधि कहते हैं। शरीरमें घुसेहुए रोगकेलिये यह सदा प्रयोग करे। हीन अग्निवालेके लिये ग्रास २ में औषधिका सेवन करना उपकारी है। कोढ़ व प्रमेहके रोगियोंको ग्रासान्तरमें दमा, खांसी और तृष्णारोगमें बारम्बार औषधिका सेवन करना हितकारि है ॥ १९ ॥ १२० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

अन्यञ्च ।

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः ।

कपायास्तु विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ २४ ॥

अर्थ—बहुधा प्रातःकालमें पंडितगण औषधिका प्रयोग करे, परन्तु व्याधिविशेषमें, धातुविशेषमें, स्वभावविशेषमें दूध और कपायादि औषधि विचारके प्रातःकालमें मध्याह्नकालमें अथवा सायंकाल और रात्रिमें प्रयोग करे ॥ २४ ॥

१ भेदः पुनः कपायपानेन वा पयस्तु प्रातः सायं मध्याह्ने रात्रौ च व्याधिविशेषधातुविशेषप्रकृतिविशेषवारतम्यतया देयमित्यर्थः ।

ज्ञेयःपंचविधःकालोभैषज्यग्रहणेनृणाम् ।

किंचित्सूर्योदयेजातेतथादिवसभोजने ॥२५॥

सायन्तनेभोजनेचमुहुश्चापितथानिशि ।

प्रायःपित्तकफोद्रेकेविरेकवमनार्थयोः ॥ २६ ॥

लेखनार्थेचभैषज्यप्रभातेऽनन्नमाहरेत् ।

एवंस्यात्प्रथमःकालोभैषज्यग्रहणेनृणाम्॥२७॥

इति प्रथमःकालः ।

अर्थ-औषधि भक्षण करनेके पांच काल हैं यथा-सूर्योदय-कालमें, दिनके समय भोजन करनेके वरुत्त, सन्ध्यासमयके भोजनमें, वारम्बार और रात्रिकालमें, तिनमें पित्त और कफ-के रोगमें और विरेचन, वमन व कर्षणके निमित्त अन्नके अति-रिक्त औषधि प्रातःकालमें प्रयोग करे । औषधि ग्रहण करनेका यह प्रथम काल है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

भैषज्यंविगुणेऽपानेभोजनाग्रेप्रशस्यते ।

अरुचौचित्रभोज्यैश्चमिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥२८॥

समानवातेविगुणेमन्देग्रावपिदीपनम् ।

दद्याद्भोजनमध्येतुभैषज्यंकुशलोभिपक् ॥२९॥

व्यानकोषेचभैषज्यंभोजनान्तेसमाहरेत् ।

हिक्काक्षेपककम्पेपुपूर्वमन्तेचभोजनात् ॥

एवंद्वितीयकालश्चोक्तोभैषज्यकर्मणि ॥३०॥

इति द्वितीयःकालः ।

अर्थ-अपानवायुके कोषमें भोजनके पहले औषधिका प्रयोग करे । अरुचिरोगमें विविधसुखाद्य और रुचिकारक भक्ष्य-

द्रव्योंके साथ औषधिका प्रयोग करे । समानवायुके कोपमें और मन्दाग्निमें, चतुर वैद्य भोजनके बीचमें अग्निको ठकसानेवाली औषधिका प्रयोग करे । व्यानवायुके कोपमें भोजनके बाद और हिचकी, आक्षेप और कंपादिरोगमें भोजनके पहले और पीछे औषधिका प्रयोग करना चाहिये । औषधिप्रयोगका यह दूसरा काल है ॥ २८ ॥ २९ ॥ १३० ॥

उदानेकुपितवातेस्वरभङ्गादिकारिणि ।

ग्रासेग्रासान्तरेदेयंभैषज्यंसात्म्यभोजने ॥३१॥

प्राणेषुदुष्टेसात्म्यस्यभक्तस्यान्तेचदीयते ।

औषधंप्रायशोर्धरैःकालोऽयंस्यात्तृतीयकः ॥३२॥

इति तृतीयःकालः ।

अर्थ-स्वरभङ्गादिरोगका करनेवाला उदानवायु कुपितहो तो रोगदूरकारी भक्ष्यद्रव्यके साथ ग्रासमें और ग्रासान्तरमें औषधिका प्रयोगकरे, प्राणवायुके कोपमें हितकारी भक्ष्य-द्रव्यकेसाथ और भोजनके अन्तमें औषधिका प्रयोग करे । बहुधा पंडितोंका यही मत है । औषधि प्रयोगका यह तीसरा काल है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

मुहुर्मुहुश्चतुर्दृष्टिर्दिहिकाश्वासगरेषुच ।

सान्नञ्चभेषजंदद्यादितिकालश्चतुर्थकः ॥ ३३ ॥

इति चतुर्थःकालः ।

अर्थ-प्यास, वमन, हिचकी, श्वास और गर (विष) दोषमें अन्नके साथ बारम्बार औषधिका प्रयोगकरे । औषधिप्रयोगका यह चौथाकाल है ॥ ३३ ॥

उर्द्धजत्रुविकारेषुलेखनेवृंहणे तथा ।

(९६) वैद्यकपरिभाषाप्रदीप ।

पाचनेशमनेदेयमनन्नंभेषजंनिशि ॥

इत्ययंपंचमःकालःप्रोक्तोभेषज्यहेतवे ॥ ३४ ॥

हति पंचमःकालः ।

अर्थ—उर्द्धजघ्नगतरोगमें, लेखनमें (निरूह वस्ति) बृंहणमें, पाचनमें और शमनमें रात्रिके समय अन्नरहित औषधिका प्रयोग करे । औषधिप्रयोगके पांचमें कालका यह वर्णन हुआ ॥ ३४ ॥

अथ क्रियाकालव्यवस्थामाह ।

यातूदीर्णशमयतिनान्यंव्याधिकरोतिच ।

साक्रियानतुयाव्याधिहरत्यन्यमुदीरयेत् ॥ ३५ ॥

अर्थ—जिस क्रियाकरके उत्पन्नहुआ रोग नाशको प्राप्त होवै और दूसरे रोगोंकी उत्पत्तिका कारण नाश होजाय, तिसको चिकित्सा कहाजाता है; परन्तु जिस क्रियासे एक रोगका निवारण होकर दूसरे रोगकी उत्पत्ति हो तिसको चिकित्सा नहीं कहते ॥ ३५ ॥

तथाच चरकचिकित्साप्रकृतीयाध्याये ।

याभिःक्रियाभिर्जायन्तेशरीरेधातवःसमाः ॥

साहिक्रियाविकाराणांकर्मतद्भिषजांमतम् ॥ ३६ ॥

“ भिषजां ” चिकित्सकानामित्यर्थः ।

अर्थ—जिस क्रियाकरके शरीरकी सब धातुएँ बराबर रहें, तिसको चिकित्सा कहतेहैं; ऐसी क्रिया कोही चिकित्सकोंकी सम्मतिके अनुसार है ॥ ३६ ॥

१ उत्पन्नदुष्ट विषमदोषोंका निवारण करना या बराबर करना ।

२ अन्यमिति—अन्यरूपादीनामन्यमतं न उदीरयेदिति न यद्धेयं न जनयेदित्यर्थः ।

अल्पेगदेमहत्कर्मक्रियालघ्वीमहागदे ।

द्वयमेतदकौशल्यंकौशल्यंगुक्तिकर्मता ॥ ३७ ॥

अर्थ—साधारण रोगमें महान् चिकित्सा और महारोगमें अल्प चिकित्सा यह दोनोंही अहितकारी हैं इस कारण यथायोग्य चिकित्साही हितकारी है ॥ ३७ ॥

क्रियायास्तुगुणालभेक्रियामन्यांसमाचरेत् ।

पूर्वस्यांशांतवेगायानक्रियासंकरोमत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—एक क्रियासे रोगकी शान्ति न हो तो दूसरी क्रिया करे। परन्तु जबतक पहली क्रियाका (पहली औषधिकी क्रियाका) वेग शान्त नहो तबतक दूसरी क्रिया नहीं करनी चाहिये । क्योंकि मिश्र औषधिका प्रयोग परस्पर गुणविरोधी होकर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करसकता है ॥ ३८ ॥

तथापिसाङ्ख्यंमाह ।

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिःक्रियासाङ्ख्यंमिप्यते ।

भिन्नरूपतयातास्तुतन्नकुर्वन्तिदूषणम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—एकप्रकारकी दो क्रिया साङ्ख्यं (व्यामिश्र) दोषजनकहैं परन्तु दूसरी प्रकारकी क्रियासाङ्ख्यं और दोषावह नहीं हैं ॥ ३९ ॥

१ संकरो व्यामिश्रता । अतो सुखप्रयोगानां मिश्रणमेकस्मिन्नेव रोगिणि न कर्तव्यं परस्परगुणविरोधात् भेषजगुणवैकल्यादप्रमान्यजननत्वाच्च ॥

२ तुल्यरूपाभिः क्रियाभिःक्रियासाङ्ख्यंमिप्यते, तु पुनस्ताः क्रिया ध्वज्जिन्नरूपा न भवन्ति तदा न साङ्ख्यंमिति तुदाद्धेनैतदुच्यते । अतो भिन्नरूपतया भतुल्यरूपाभिः क्रियाभिर्न क्रियासाङ्ख्यं भवतीत्यर्थः । एतेनैव बोधयति पाचनघृतयोर्द्वयोर्गुह्यदृक्कलेदरादिकादीनाश्च पाचनपुक्तानामेकस्मिन्नेव रोगिण्येकदिने प्रयोगः कर्तव्यो यथा व्याधे-
स्तुपानं यद्यत् पाचनविहितमिति, किन्तु भिन्नरूपेणौषधद्वयेन दोष-
प्रसङ्गः स्यादेव, अतः परस्परविरोधित्वेन औषधद्वयकलना कार्या ।
यथा गुटिकाद्वये लेहद्वयमाधिकमिति दिक् ॥

पट्टभिः केचिदहोरात्रैः केचित्सप्तभिरेव च ।

इच्छन्ति मुनयः प्रायोरसस्य परिवर्तनम् ।

कृत्वा कुर्यात्क्रियां प्राप्तां क्रिया कालं न हापयेत् १४०

अर्थ—किसीके मतसे इसका बदल छयदिन छयरातमें होता है और कोई कहते हैं कि सातदिन सातरातमें भली भांतिसे रस-का बदल होजाता है यथा समयमें अर्थात् रोगके आरम्भमें चिकित्सा करना उचित है । चिकित्साका समय लंघन करना कर्त्तव्य नहीं है ॥ १४० ॥

सर्वश्वरोगे प्रशमायकम् ।

हीनातिरिक्तं विपरीतकालम् ॥

मिथ्योपचारान्नहितद्विकारम् ।

शान्तिनयेत्पथ्यमपि प्रयुक्तम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—रोगकी शान्तिके लिये अल्पचिकित्सा करन अधिक क्रिया करना, या यथायोग्य कालको लांघ जाकर चिकित्सा करना, मिथ्या उपचार (वृथा औपधिका प्रयोग करना) यह सबही न करने चाहियें । क्योंकि उपरोक्त रीतिसे सुपथ्यभी दिया जाय तोभी उससे रोगका नाश नहीं होता ॥ ४१ ॥

अथ पारिभाषिकीं संज्ञामाह ।

वृक्षाम्लमातुलुङ्गाम्लौवदाराम्लाम्लवेतसौ ।

चतुरम्लमिदं तद्धि पंचाम्लञ्च सदा डिमम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—वृक्षाम्ल, विजौरानांबू, बदरी, (बड़ा आमला) और अमलवेत इन चारके संयोगको चतुरम्ल और चतुरम्लके साथ दाडिमका संयोग करनेसे तिसको पंचाम्ल कहते हैं ॥ ४२ ॥

सौवर्चलसैन्ववंचविडमौद्भिदमेवच ।

सामुद्रेणसहैतानिपञ्चस्युल्लवणानिच ॥

एकद्वित्रिचतुःपञ्चलवणानिक्रमाद्विदुः ॥ ४३ ॥

अर्थ-विरियासंचर, सेंधा, विड, उद्भिद और समन्दर-
नोन, इनपांचके मेलको पंचलवण कहतेहैं । क्रमानुसार
इनमेंसे एकको एकलवण, दोको द्विलवण, तीनको त्रिलवण
इत्यादि कहा जाता है ॥ ४३ ॥

अविमूत्रमजामूत्रंगोमूत्रंमाहिपञ्चयत् ।

हस्तिमूत्रमथोष्टस्यहयस्यचखरस्यच ॥

इतिप्रोक्तानिमूत्राणियथासामर्थ्ययोगतः ॥ ४४ ॥

अर्थ-मेपमूत्र, छागमूत्र, गोमूत्र, माहिपमूत्र, हस्तिमूत्र,
उष्ट्रमूत्र, अश्वमूत्र, और गर्दभमूत्र, इन आठको मूत्रवर्ग कह-
तेहैं. इनमें जिसका मूत्र संग्रह कियाजाय, तिसकोही
प्रयोगकरे ॥ ४४ ॥

सर्पिस्तैलंवसामज्जास्नेहोप्युक्तश्चतुर्विधः ।

पानाभ्यंजनवस्त्यर्थेनस्यार्थञ्चैवयोगतः ॥ ४५ ॥

अर्थ-घी, तेल, वसा और मज्जा यह चार प्रकारके स्ने-
ह हैं, यह पान अभ्यङ्ग (मर्दन) पिचकारी और नस्त्यकर्ममें
प्रयोगकरे ॥ ४५ ॥

अविक्षीरमजाक्षीरंगोक्षीरंमाहिपञ्चयत् ।

उष्ट्रीणांहस्तिनीनाञ्चवडवायाःस्त्रियस्तथा ॥ ४६ ॥

अर्थ-मेपदुग्ध, छागदुग्ध, गोदुग्ध, माहिपदुग्ध, उष्ट्रीदुग्ध,
हस्तिनीदुग्ध और गवयाका दूध, इन सबको दुग्धवर्ग
कहतेहैं ॥ ४६ ॥

चातुर्जातसमाख्यातं त्वगेलापत्रकेशरैः ॥ १४७ ॥

अर्थ—दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर इन चारको चातुर्जात कहते हैं ॥ १४७ ॥

तदेव त्रिसुगन्धिस्यान्निजातकमकेशरम् ॥ १४८ ॥

अर्थ—नागकेशरके सिवाय और तीन अर्थात् दालचीनी, इलायची और तेजपात इनके संयोगको निजातक कहते हैं ॥ १४८ ॥

चातुर्जातककफूरकङ्कोलागुरुसिद्धकम् ।

लवङ्गसहितञ्चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥ १४९ ॥

अर्थ—चातुर्जातक, कफूर, काकोली, अगुरु, शिलारस (लोवान) और लोंग इनके मेलको सर्वगन्ध कहते हैं ॥ १४९ ॥

पथ्याविभीतकंधात्रीमहतीत्रिफलामता ।

स्वरूपाकाश्मर्यखजूरः परूपकफलैर्भवेत् ॥ १५० ॥

अर्थ—हरड, आमला और बहेडा इनको महती त्रिफला कहते हैं और गाम्भारीफल, खजूर, फालसा इनतीनोंको स्वरूप त्रिफला कहते हैं ॥ १५० ॥

पिप्पलीशृङ्गवेरञ्चमरिचं त्र्यूपणं विदुः ।

विडङ्गमुस्तचित्रैश्च त्रिमदः समुदाहृतः ॥ १५१ ॥

अर्थ—पीपल, सोंठ और मिर्च इनतीनोंको त्र्यूपण और वायविडङ्ग मोथा और चीता इनतीनोंको त्रिमद कहते हैं ॥ १५१ ॥

उटुम्बरोवटोऽश्वत्थो वेतसः प्लक्ष एव च ॥

पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षाः संज्ञया समुदाहृताः ॥ १५२ ॥

१ वेतसोऽयं गन्धिनः इति ख्यातः । गन्धमुस्त इत्युत्तरदेशे यस्य मसिद्धिः प्लक्ष इति वटः अथवा पकंदीत्यश्वत्थभेदः ॥

अर्थ—गूलर, वट, पीपल, वेतस और पिलखन इन पांचको क्षीरिवृक्ष कहते हैं ॥ १५२ ॥

आम्रजम्बूकपित्थानां विजपूरकविल्वयोः ॥

गन्धकर्मणिसर्वत्रपत्राणि पंचपल्लवम् ॥ १५३ ॥

अर्थ—आम, जामुन, कैथ, विजौरानांजू और वेल, इन पांचोंको पंचपल्लव कहते हैं । इनका प्रयोग सर्वत्र गन्धकर्ममें होता है ॥ १५३ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागरम् ॥

पंचकोलमिदंप्राहुः पंचोपणमथापरे ॥ १५४ ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतामूल और सोंठ इन पांचको पंचकोल या पंचोपण कहते हैं ॥ १५४ ॥

पंचकोलंसमरिचंपटूपणमुदाहृतम् ॥ १५५ ॥

अर्थ—पंचकोलके साथ मिर्चका संयोग करनेसे तिसको पटूपण कहते हैं ॥ १५५ ॥

विल्वश्यानाकगाम्भारीपाटलागणिकारिका ।

एतन्महत्पंचमूलंसंज्ञया समुदाहृतम् ॥ १५६ ॥

अर्थ—वेल, श्यानाक, गाम्भारी, पाटल, अरणी, इन पांचों महत् पंचमूल कहते हैं ॥ १५६ ॥

शालपर्णीपृश्निपर्णीवृहतीद्वयगोक्षुरम् ।

कनीयः पंचमूलस्यादुभयंदशमूलकम् ॥ १५७ ॥

अर्थ—शालपर्णी (शरिवन) पिठवन, वृहती, कटेरी, और गोखरु, इन पांचको स्वल्प पंचमूल कहते हैं; इन दोनों पंचमूलको इकट्ठा करनेसे दशमूल कहा जाता है ॥ १५७ ॥

कुशःकाशःशरोदर्भश्चैवतृणोद्भवम् ।

पंचतृणमिदंख्यातंतृणजंपंचमूलकम् ॥ १५८ ॥

अर्थ—कुश, कांस, शर, दर्भ और गन्ना, इन पांचको पंचतृण अथवा पंचमूल कहते हैं ॥ १५८ ॥

विदारीचाजशृङ्गीचरजनीसारिवामृतम् ।

वल्लीजंपंचमूलंचकथितंमुनिपुंगवैः ॥ १५९ ॥

अर्थ—विदारीकंद, मेढाशृङ्गी, हलदी, अनन्तमूल और गिलोय इन पांचको मुनियोंने वल्लीज पंचमूल कहा है ॥ १५९ ॥

करमर्दःश्वदंष्ट्राचहिंसाझिटीशतावरी ।

कण्टकारुयंपंचमूलंनिर्दिष्टंसूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ १६० ॥

अर्थ—करंज, गोखरू, तालमखाना, पियावासा, शतावरी इन पांचको कण्टकारुयमूल पंडितलोगोंने कहा है ॥ १६० ॥

ऋद्धिर्वृद्धिश्चमेदेद्वेतथार्पभकजीवकौ ।

काकोलीक्षीरकाकोलीत्यष्टवर्गःप्रकीर्तितः ॥ १६१ ॥

अर्थ—ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, ऋपभक, जीवक, काकोली और क्षीरकाकोली इन आठके मेलको अष्टवर्ग कहते हैं ॥ १६१ ॥

अष्टवर्गश्चपर्णिन्यौजीवन्तीमधुकंतथा ।

जीवनीयगणःप्रेक्तोजीवनश्चपुनस्ततः ॥ १६२ ॥

अर्थ—अष्टवर्गके साथ मसवन, भुगवन, जीवन्ती और मुलह, ठीका संयोग किया जाय तो इसको जीवनीयगण कहते हैं ॥ १६२ ॥

शोभांजनस्ययद्भीजंतच्छ्वेतमरिचंस्मृतम् ॥१६३॥

अर्थ—संजनेके बीजको श्वेतमरिच कहते हैं ॥ १६३ ॥

ज्येष्ठाम्बुतण्डुलाम्बुस्यादुष्णाम्बुचसुखोदकम् १६४

अर्थ—चावलके पानीको ज्येष्ठाम्बु और गरमजलको सुखोदक कहते हैं ॥ १६४ ॥

गुडयोगाद्गुडाम्बुस्याद्गुडवर्णरसान्वितम् ॥ १६५ ॥

अर्थ—गुड़की समान रस, गन्ध और रंगवाले गुड़युक्त जलको गुडाम्बु कहते हैं ॥ १६५ ॥

निरस्थिपिशितं पिष्टंस्विन्नं गुडसमन्वितम् ।

कृष्णामरिचसंयुक्तं वेसवार इति स्मृतः ॥ १६६ ॥

अर्थ—अस्थिहीन मांसको पीसकर गुड़, घी, पीपल और मिर्चके संयोगसे पाक किया जाय, तो इसे वेशवार कहते हैं ॥ १६६ ॥

काञ्जिकं व्युपितं पक्वं मूलकं त्वम्लमूलकम् ॥ १६७ ॥

अर्थ—मूली, कांजीमें भिजोरखकर बासी करके पकाली जायतो इसको अम्लमूलक कहते हैं ॥ १६७ ॥

दध्नः ससारकस्यात्र तक्रं कङ्कुरमिष्यते ॥ १६८ ॥

अर्थ—मक्खनयुक्त दहीके तक्रको कङ्कुर कहते हैं ॥ १६८ ॥

तक्रं ह्युदधिन्मथितं पादाम्बुर्द्धाम्बुनिर्जलम् १६९ ॥

अर्थ—दहीमें चौयाई जल मिलाकर तिसको मथै, इसका नाम तक्र है आधे भाग जल मिले दहीको मथनेसे तिसको उद-
धि कहते हैं और निर्जल दही मयाजाय तो तिसको मथित कहते हैं ॥ १६९ ॥

दध्ना सह पयः पक्वं सा भवेद्विकूर्चिका ।

तक्रेणयत्पयःपक्वंसाभवेत्तक्रकूचिका ॥१७०॥

अर्थ-दहीके साथ दुग्धपाक करनेसे तिसको दधिकूचिका और तक्र (मट्ठा) के साथ दुग्धपाक करनेसे तिसको तक्र-कूचिका कहते हैं ॥ १७० ॥

कन्दमूलफलादीनिसस्नेहलवणानिच ।

यत्रद्रव्येऽभियुज्यन्तेतच्छुक्तमभिधीयते ॥१७१॥

अर्थ-तरलद्रव्यमें कन्द, मूल, फल, तेल और लवणादि भिजोरकसे तौ उस तरल द्रव्यको शुक्त कहते हैं ॥ १७१ ॥

सीधुरिक्षुरसैःपक्वैरपक्वैरासवोभवेत् ॥ १७२ ॥

अर्थ-गन्नेका रस पकाकर जो मद्य तैयार किया जाता है तिसको सीधु और कच्चे रससे जो मद्य तैयार होता है, तिसको आसव कहते हैं ॥ १७२ ॥

मैरेयंधातकीपुष्पगुडधान्याम्लसंहितम् ॥ १७३ ॥

अर्थ-धायफूल, गुड और धान्याम्लके मेलसे जो मद्य तैयार होता है तिसको मैरेय कहते हैं ॥ १७३ ॥

आरनालन्तुगोधूमैरामैःस्यान्निस्तुपीकृतैः ॥

पक्वैर्वासन्धितैस्तत्तुसौवीरसदृशंगुणैः ॥१७४॥

अर्थ-पके या कच्चे भुस्सीरहित गेहूंका सन्धान करके जो पदार्थ तैयार होता है, तिसको आरनाल कहते हैं, इसका गुण सौवीरकी समान है ॥ १७४ ॥

मन्थनीनूतनाधार्याकटुतैलेनलेपिता ॥

निर्मलेनाम्बुनापूर्यातस्यांचूर्णविनिक्षिपेत् १७५॥

राजिकाजीरलवणहिंशुशुण्ठीनिशाकृतम् ॥

निक्षिपेद्वटकांस्तत्रभाण्डस्यास्यंचमुद्रयेत् ॥

ततोदिनत्रयादूर्ध्वमम्लाःस्युर्वटकाध्रुवम् ॥ १७६ ॥

अर्थ—मयनके नये पात्रमें कड़वे तेलका लेप करके उसमें निर्मल जलभरे, श्वेतसरसों, जीरा, सेंधा, हींग, सोंठ और कच्ची हलदीका चूर्ण यह सब एकसाथ डालकर गोलियें बनाय इसपात्रमें धरे; फिर पात्रका मुख बन्दकरदे । बादको दूसरे दिन रस खड़ा होतेही जानलेकि बटक तैयार होगये ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

तिलतण्डुलमापैश्चकृशरात्रिशरेतिसा ॥ १७७ ॥

अर्थ—तिल, चावल और रईसे तैयार हुए यवागूको कृशरा (खिचडी) वा त्रिशरा कहते हैं ॥ १७७ ॥

यन्मस्त्वादिशुचौभाण्डेसगुडक्षौद्रकांजिकम् ।

धान्यराशौत्रिरात्रस्थंशुक्तंचुक्रंतदुव्यते ॥ १७८ ॥

अर्थ—निर्मल पात्रमें गुड, शहद और कांजीके मेलसे मस्तु-आदि धान्यराशिमें तीन रात धरके ग्रहण किया जाय तिसको शुक्त चुक्र कहते हैं ॥ १७८ ॥

यदपक्वौपधाम्बुभ्यांसिद्धमद्यंसआसवः ॥ १७९ ॥

अर्थ—कच्ची औषधि और जलसे तैयार हुए मद्यको आसव कहते हैं ॥ १७९ ॥

अरिष्टःकाथसिद्धःस्यात्सम्पक्वोमधुरद्रवैः ॥ १८० ॥

अर्थ—पके हुए काथ और मधुररसयुक्त द्रव्य (तरल) पदार्थसे सिद्धहुए मद्यको अरिष्ट कहते हैं ॥ १८० ॥

आश्रितश्चापिसीधुःस्यादित्याहुस्तद्विदो जनाः ॥ १८१ ॥

“ आश्रितइतिसम्यक्पक्वः ”

अर्थ—भलीभाँतिसे पकेहुए मद्यको सीधु कहते हैं ॥ १८१ ॥

सुरामण्डःप्रसन्नास्यात्तत्रकादम्बरीधना ॥

तदधोजगलोज्ञेयोभेदकोऽजगलोधनः ॥ १८२ ॥

अर्थ—सुराके ऊपरवाले स्वच्छ भागको प्रसन्ना कहते हैं । प्रसन्नाकी वनिस्वत कादम्बरीनामक मद्य घना होता है, कादम्बरीके निचले मद्यको जगल कहते हैं । भेदकमद्य जगलमद्यकी वनिसवत गाढा है ॥ १८२ ॥

पक्कासाहृतसाराचसुराबीजंचकिल्लकम् ॥ १८३ ॥

अर्थ—सारहीन सुराको वक्स और सुराबीजको किल्लक कहते हैं ॥ १८३ ॥

यत्तालखजूररसैरावृतासैववारुणी ॥ १८४ ॥

अर्थ—ताल और खजूरके रस करके अलग २ सन्धान करके जो मद्य तैयार होता है तिसको वारुणी मद्य (ताडी) कहते हैं ॥ १८४ ॥

गुडाम्बुनासतैलेनकन्दशाकफलैस्तथा ॥

आसुतंचाम्लतांयातंगुडशुक्तंतदुच्यते ॥ १८५ ॥

अर्थ—गुडका जल, तेल और विविध कन्दशाक और फल यह सब इकट्ठे संधान करके जब अम्लरसयुक्त हो जाय तब इसको गुडशुक्त कहा जाता है ॥ १८५ ॥

एवमेवैक्षुशुक्तंस्यान्मृद्धीकासम्भवंतथा ॥ १८६ ॥

अर्थ—ऊपर फही रीतिसे गन्नेके रस और दाखका सन्धान होतो उसे शुक्त कहते हैं ॥ १८६ ॥

तुपाम्बुचासुतंज्ञेयमापैर्विदलितैर्यवैः ।

सुनिस्तुपैश्चपक्वैश्चसौवीरिंचासुतंभवेत् ॥ १८७ ॥

अर्थ-उर्द और जौको दलकर संधान करनेसे तिसको तुषाम्बु कहते हैं; और भुस्सीहीन पक्के जौके सन्धानसे कियाजाय, तिसको सौवीर कहते हैं ॥ १८७ ॥

कुलभापोधान्यमण्डेनचासुतंकांजिकंभवेत् ॥१८८॥

अर्थ-धान्यमांडके साथ अर्द्धसिद्ध गोधुमादिका संधान होनेसे कांजी तैयार होती है ॥ १८८ ॥

अन्यत्रयदाहचरः ।

भृष्टान्मापतुपान्निर्दिष्टान्यवचूर्णसमन्वितान् ॥

आश्रितान्भसातद्वज्जातंतच्चतुपोदकम् ॥१८९॥

अर्थ-चरकमुनिने कहाहै-उर्दकी भुस्सी भुनाकर पकावै । फिर उसमें जौका आटा मिलाकर कांजी तैयार करनेकी विधि के अनुसार जल डालकर भिगोरक्खे । जब खट्टा होजाय तब तुपोदकको तैयार हुआ जानें ॥ १८९ ॥

आशुधान्यंक्षोदितञ्चवालमूलन्तुखण्डशः ।

कृतंप्रस्थमितंपात्रेजलंतत्राढकंक्षिपेत् ॥ १९० ॥

तावत्सन्धीयसंरक्षेद्यावदम्लत्वमागतम् ।

कांजिकंतत्तुविज्ञेयमेतत्सर्वत्रपूजितम् ॥ १९१ ॥

अर्थ-कूटेहुए आशुधान्य ८ सेर, कच्चीमूलीके टुकड़े २ सेर और जल १६ सेर, इन सबको इकट्ठा साफ बर्तनमें सन्धान करके रक्खे, फिर खट्टा होतेही कांजीको तैयार हुआ जानें और सब कामोंमें उसका व्यवहार करे १९०।१९१

शिण्डाकीचासुताज्ञेयामूलकैःसर्पपादिभिः ॥१९२॥

अर्थ-मूली और सरसों आदिके सन्धानसे बनेहुए मद्यको शिण्डाकी कहतेहैं ॥ १९२ ॥

जम्बीरस्वरसप्रस्थंमधुनःकुडवन्तथा ।

तावच्चपिप्पलीमूलदेकीकृत्यवटोक्षिपेत् ॥

धान्यराशौस्थितंमासंमधुशुक्तंतदुच्यते ॥ १९३॥

अर्थ—जम्बीरनींबूका रस एक प्रस्थ (२ सेर) शहद ५॥ सेर पीपला मूल५॥ यह सब एक घड़ेमें रखके एक मासतक नाजके ढेरमें रखै, तो मधुशुक्त तैयार होता है १९२ १९३

तक्रंकपित्थचांगेरीमरिचाजाजिचित्रकैः ।

सुपक्तंपड्यूपोऽयमयंकाम्बलिकोऽपरः ॥ १९४ ॥

दध्यम्ललवणस्नेहतिलमापसमन्वितः ।

संज्ञाप्रमथ्याविहितायोगेदीपनपाचने ॥ १९५ ॥

अर्थ—मट्ठा, कैथ, आमडा, मिर्च, जीरा और चीता यह सब इकट्ठे पकाकर जूप बनावै, इसको पड्यूप कहते हैं और इन सब चीजोंके साथ दही, खट्टे पदार्थ, सेंधा घृतादि स्नेह, तिल और उर्दका संजोग करके पाक करनेसे तिसको काम्बलिक जूप कहते हैं । इसका दूसरा नाम प्रमथ्या है । अधिके ढकसाने और हाजमेके योगमें यह विशेष फलदायी है ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

द्रवेणातोभृतास्तेपुस्तर्पणंलाजसक्तवः ॥ १९६ ॥

अर्थ—खीलोंके सन्न द्रव (तरल) द्रव्यसे मिला लिये जाय तो इनका यह मेल तर्पण कहा जाता है ॥ १९६ ॥

सक्तवःसर्पिपायुक्ताःशीतवारिपरिप्लुताः ।

अनत्यच्छातिसान्द्राश्चमन्यइत्याभिधीयते ॥ १९७ ॥

अर्थ—पीमें मलेदुष्ट सन्न, शीतल जलमें डुबाकर अधिक स्पष्ट या अधिक पन नहों इसप्रकारसे मिलाने पर मन्य कह जाते हैं ॥ १९७ ॥

काथ्यमानन्तुयत्तोयंनिष्फेनंनिर्मलीकृतम् ।

भवत्यद्वावशिष्टन्तुतदुष्णोदकमिष्यते ॥ १९८ ॥

अर्थ-निर्मलीफल और गोमेदक (मणिविशेष) आदिसे निर्मलकिये आधे रहे सिद्ध जलको उष्णोदक कहते हैं ॥ १९८ ॥

चिकित्सितं व्याधिहरं पथ्यं साधनमौषधम् ।

प्रायश्चित्तं प्रशमनं प्रकृतिस्थापनं हितम् ॥ १९९ ॥

विद्याद्वेपजनामानितच्चापिद्विविधं स्मृतम् ।

सुस्थस्योजस्करं किंचित्किञ्चिदार्त्तस्य रोगनुत् २००

अर्थ-चिकित्सित, व्याधिहर, पथ्य, साधन औषध, प्रायश्चित्त, प्रशमन, प्रकृति, स्थापन और हित, यह सब औषधियोंके नाम हैं । यह औषधें भी दो प्रकारकी हैं; जैसे:- कोई २ औषधि निरोगीको बलकारक है और कोई औषधि रोगीके रोगका नाश करनेवाली है ॥ १९९ ॥ २०० ॥

परिभाषाप्रदीपसंग्रहकावृत्तीयखण्डसमाप्त ।

अथ पंचकर्माण्याह ।

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिताः कालेन पाचनैः ।

ये तु संशोधनैः शुद्धान्ते पाण्डुन रुद्भवः ॥ १ ॥

अर्थ-वायु, पित्त और कफ इन तीनोंके कुपित होनेसे यथा समयमें दोषका नाश करनेवाले लघन और पाचनादिसे कुपित दोष दब जाता है । जिन दोषहरनेवाली औषधियोंसे दोष शुद्ध होता है, वह फिर उत्पन्न नहीं होता ॥ १ ॥

१ पाचनैरिति लघनपाचनादिभिर्दोषहारादिभिरित्यर्थः ।

वमनं रेचनं नस्यं निरूहश्चानुवासनम् ।

ज्ञेयं पञ्चविधं कर्म मात्रातस्य प्रयुज्यते ॥

यदावहेद्वहिर्दोषान्पञ्चधा शोधनं हितम् ॥ २ ॥

अर्थ—वमन, विरेचन, (दस्त-धुलाव) नस्य, निरूह और अनुवासन, इन पांच क्रियाओंको योग्य मात्रासे प्रयोग करके शरीरके दोषको शुद्ध करले ॥ २ ॥

ननस्यं न्यूनसप्तादेः नातीताशीतिवत्सरे ।

नचोनद्वादशे धूमः कवलेनोनपञ्चमे ॥ ३ ॥

नशुद्धिरूनदशमेनचातिक्रान्तसप्ततौ ।

नन्यूनषोडशाशीतिसप्ततौ रक्तमोक्षणम् ॥

आजन्ममरणाच्छस्तः प्रतिमर्पस्तु सर्वदा ॥ ४ ॥

अर्थ—सातवर्षसे नीचे और अस्सी वर्षसे अधिक उमर वालेपर नस्यका प्रयोग न करे । १२ वर्षकी उमरसे कम बालकको धूम, पांचवर्षसे कम उमरके बालकको वमन और विरेचनन करावे सत्तर वर्षसे अधिक उमरवालेकोभी यह प्रयोग न करावे । १६ वर्षसे कम अथवा ७० वर्षसे अधिक उमरवालेका रक्तमोक्षण (फस्तादि) कराना ठीक नहीं, प्रतिमर्पका, जन्मसे लेकर जीवित-फालतक सदाही व्यवहार होसकता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

सवादीपमनमाह ।

पूर्वाह्निपाययेत्पीतं जानुतुल्यासने स्थितः ।

तन्मना जातहृत्प्रासप्रसेकश्छर्दयेत्ततः ॥ ५ ॥

अर्थ—वमनकी विधि कही जाती है । प्रातःकालही औषधिका सेवन करके रुईके आसनपर जापोंके घल घँठ एकामचिसे वमनकी चिन्ता करे, इसमें पहले हृत्प्रास

(वमनवेग) फिर प्रसेक (मुखस्त्राव) और फिर वमन होता है ॥ ५ ॥

चरकस्त्वाह ।

माधवप्रथमेमासिनभस्यप्रथमेपुनः ।

सहस्यप्रथमेचैववाहयेदोषसंचयम् ॥ ६ ॥

अर्थ—चरकमुनि कहते हैं कि, वैशाख, भाद्र और चैत्र मासके प्रथममें देहमें इकट्ठे हुए दोषोंको निकाले ॥ ६ ॥

अन्यञ्च ।

मधौसहेननभसिमासिदोषांस्तुवाहयेत् ॥ ७ ॥

“ मधौ ” “ चैत्रेमासि ” “ सहे ” अग्रहायणे, नभसि श्रावणे दोषान् वाहयेदित्यर्थः ।

अर्थ—चैत्र, अग्रहायण और श्रावणमासमें एकत्र हुए दोषोंको निकाले ॥ ७ ॥

प्रत्युष्णवर्षशीताहिर्ग्रीष्मवर्षाहिमागमाः ।

औपधस्यशरीरस्यतेभवन्तिविकल्पकाः ॥

“ विकल्पका इति विरुद्धकार्यजनकाः ” ॥ ८ ॥

अर्थ—ग्रीष्म, वर्षा, और शीतकालमें यदि क्रमानुसार अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त वर्षा और अत्यन्त शीत अर्थात् ग्रीष्मकालमें अधिक गरमी, वर्षाकालमें अत्यन्त वर्षा इत्यादि होतो औपधिके और शरीरके लिये विरुद्धकार्यकारक होती है ॥ ८ ॥

उपयुक्तकालमाह ।

प्रावृट्शुक्लभौज्यौशरदूर्जसहौपुनः ।

१ माधवप्रथमे मासीति वैशाखप्रथमे भागे, भाद्रस्य प्रथमे, पौषस्य प्रथमे च दोषसंचयं दोषाणां संचयमुपचयं चाहयेत् । स्तारयेदित्यर्थः ।

फाल्गुनश्चमधुश्चैववसन्तःशोधनं प्रति ॥ ९ ॥

अर्थ—संशोधनकी किया आपाठ और श्रावण प्रावृत्कालमें, कार्तिक और अग्रहायण शरत्कालमें, फागुन और चैत वसन्तकालमें प्रयोग करे ॥ ९ ॥

क्रमात्कफःपित्तमथानिलश्च
यस्येति सस्यग्वमितःसइष्टः ॥
हृत्पार्श्वमूर्ध्नेन्द्रियमार्गशुद्धौ
तनोर्लघुत्वेऽपिचलक्ष्यमाणे ॥

आमाशयस्थःकफस्तस्मात् कफश्रुत्या तस्यप्रथ-
मोल्लेखः । ततस्तदधःपित्ताशयस्तस्मात्पित्तम् ।
पक्वाशयस्तदधस्ततोऽनिलः । एतिगच्छति । क्रमादि-
त्यनुक्रमात् ॥ १० ॥

अर्थ—कफ, पित्त और वायु भली भांतिसे धीरगामी हो और हृदय, बगल, मस्तक, इन्द्रिय और समस्त स्रोत शुद्ध हो जाय, शरीरमें हलकापन आजाय, तो जानले कि, वमनक्रिया ठीक हुई ॥ १० ॥

कफप्रसेकःस्वरभेदतन्द्रा
निद्रास्यदौर्गन्ध्यविपोषसर्गाः ॥
गुरुत्वकासग्रहणीप्रदोषा-
नसन्तिजन्तोर्वमितःकदाचित् ॥ ११ ॥

अर्थ—भलीभांतिसे वमनक्रिया करानेपर कफका निकलना, स्वरभेद, तन्द्रा, निद्रा, मुखकी दुर्गन्ध, विषके उपद्रव,

शरीरका भारीपन, खाँसी और ग्रहणीआदिसमस्त रोग कभी नहीं होते ॥ ११ ॥

असद्रमितेदोषमाह ।

दुर्छादितेस्फोटककोठकंडूः ॥

हृत्स्वाविशुद्धिर्गुरुगात्रताच ।

खमिन्द्रियमतःसर्वेन्द्रियस्याविशुद्धित्वं सामान्यात्
हृद्द्वयमएतयोरविशुद्धिरित्यर्थः ॥ १२ ॥

अर्थ-असम्यक् (अनियमित) वमनसे फोड़ा, कब्ज, और दाह उत्पन्न होतेहैं हृदय, स्रोतें, और इन्द्रियोंके शुद्ध न होनेसे देहमें भारीपन होता है ॥ १२ ॥

असिधमिधेदोषमाह ।

तृणमोहमूर्च्छानिलकोपनिद्रा ।

बलातिहानिर्वमितेतिविद्यात् ॥ १३ ॥

अर्थ-अधिक वमनसे प्यास, मोह, मूर्च्छा, वायुका कोप, नादका नाश और बलहानि इत्यादि लक्षण उत्पन्न होतेहैं ॥ १३ ॥

सुस्थवृत्तिमभिप्रेत्यव्याधौव्याधिवशेनतु ।

कृत्वाशीतोष्णवृष्टीनांप्रतीकारंयथायथम् ॥

प्रयोजयेत्क्रियांप्राप्तांक्रियाकालंनहापयेत् ॥ १४ ॥

अर्थ-देहकी सुस्थतापर दृष्टि रखके व्याधिके अनुसार शीत ग्रीष्म और वर्षाका प्रतीकार करके योग्य समयमें रोगको दूर करनेकी चेष्टाकरे, चिकित्साके कालको उल्लंघन न करे ॥ १४ ॥

अथ वमनभेषजमात्रमाह ।

क्वाथ्यद्रव्यस्यकुडवंस्तापयित्वाजलाढके ।

चतुर्भागावशिष्टन्तुवमनेष्ववतारयेत् ॥ १५ ॥

अर्थ—काथ्य द्रव्य आधसेर लेकर सोलहसेर जलमें पकावै । जब चौथाई भाग रहजाय तो उतारकर यह जल वमनके लिये प्रयोगकरे ॥ १५ ॥

काथ्यद्रव्यपलेवारिप्रस्थार्द्धपादशेषितम् ।

कर्पेप्रदायकल्कस्यमधुसैन्धवयोस्तथा ॥ १६ ॥

सुखोष्णंवितरेद्वांतौमधूष्णंस्यान्नदोपकृत् ।

प्रच्छर्दनेनिरूहेचमधूष्णंनविरुद्धते ॥ १७ ॥

अपक्वपाकमास्वेवतयोर्यस्मान्निवर्तयेत् ।

जात्यधोदोषमादायपच्यमानंविरेचनम् ॥ १८ ॥

गुणोत्कर्षात्तुजातूद्धमपक्वंवमनंपुनः ।

"तयोरितिवमनविरेकयोःपक्वापकयोरित्यन्वयः" १९

अर्थ—आठतौला काथ्य द्रव्य ग्रहण करके २ सेर जलमें सिद्धकरे, जब चौथा अंश रहजाय तब उतारले, तिसमें १ तो० शहत और १ तो० सैंधानोंन मक्षेपदेकर कुछ एक गरमरहते दुग्ध वमनके लिये प्रयोगकरे ॥ १ ॥ शहत, उष्णतादोषवाला नहीं होता, क्योंकि वमनमें और निरूहमें उष्णमधु विरुद्ध नहीं हैं । क्योंकि वह परिपाक नहीं होसकता । वमन और विरेचक औषधि प्रयोगकरने पर थोड़ेही समयमें निकल जाती है तिनमें विरेचक औषधि प्रयोजित होने पर परिपाक हो दोषको ग्रहण करके तिसके साथ नीचे जानेंके पीछे मलद्वारसे होकर बाहर निकलजाती है । वमनकारक औषध प्रयोग करने पर अपने गुणकी श्रेष्ठतासे ऊपरको जाय बिनापके ही बाहर होजाती है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

वमननिषेधमाह ।

नवामयेत्तैमिरिकंनगुल्मिनं
नचापिपाण्डूदररोगपीडितान् ।
स्थूलक्षतक्षीणकृशातिवृद्धा-
नशोऽर्दिताक्षेपकपीडितांश्च ॥ २० ॥
रूक्षेप्रमेहेतरुणेचगर्भे
गच्छत्यथोर्द्धेरुधिरेचतीत्रे ।
दुष्टेचकोष्ठेक्रिमिभिर्मनुष्यं
नवामयेद्वर्चासिचातिवृद्धेः ॥ २१ ॥
एतेप्यर्जाणव्यथितावम्यायेचविपातुराः ।

अत्युल्बणकफायेचतेचस्युर्मधुकाम्बुना ॥ २२ ॥

“तैमिरिकादयोऽपि एतादृशावस्थायां वम्या इति शेषः ॥

अर्थ—रतोंधा या धुंघ, गुल्म, पाण्डु और उदररोगसे पीडित, स्थूल, क्षतक्षीण, दुबला, अतिवृद्ध, बवासीररोगी, अर्दित, आक्षेप, रूक्ष और प्रमेह रोगवालेको, बालक, गर्भवती, ऊर्द्धगामी तीव्ररक्तपित्तरोगी, क्रिमिकरके जिसका कोंठा बिगड़ गया है और कब्ज है, इनको वमनकारक औषधि न दे । परन्तु जो यह अजीर्णरोगसे पीडित, विपरोगाक्रान्त या अत्यन्त बूढ़ हुए कफसे पीडित हों तो मुरहठीकायके साथ उचित वमनकारक औषधिप्रयोग कराके वमन करावै ॥ २० ॥ २१ ॥ २२

मन्दाग्निर्वेदनामन्दगुरुस्तिमितकोष्ठता ।

सोत्कृशेच्छाचारुचिर्यस्यसगुल्मीवमनोपगः ॥ २३ ॥

अर्थ—गुल्मरोगवालेको अग्निकी मन्दता, पीडा, शरीरका भारीपन, कोंठेका बंध जाना, शरीरका झनझनाना और

अरुचि दिखाई दे तो तिसको वमनकारक औपधिका प्रयोग करावै ॥ २३ ॥

शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ।

वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलोभिषक् ॥

तथा वमनसात्म्यञ्च धीरचित्तं च वामयेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—शरत्, वसन्त और वर्षा इन तीन ऋतुओंमें वमन और विरेचन कराना उचित है । जिनको वमनका अभ्यास है और जो धीर चित्तवाले हैं तिनको वमन करावै ॥ २४ ॥

विपदोपेस्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ श्लैष्मिपदेऽर्बुदे ।

विसर्पकुष्ठहृद्दोगमेहाजीर्णभ्रमेऽपुच ॥ २५ ॥

विदारिकाऽपचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु ।

अपस्मारज्वरोन्मादितथारक्तातिसारिषु ॥ २६ ॥

नासाताल्वोष्ठपाकेषुकर्णस्रावेऽधिजिह्वके ।

गलगण्डेऽतिसारे च पित्ते श्लेष्मगदे तथा ॥

भेदोगदेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद्भिषक् ॥ २७ ॥

अर्थ—विपदोप, विसर्परोग, स्तन्यरोग, अधिकी मंदता, श्लैष्मिपद (पाँव आदिका सूजना), अर्बुदरोगमें, कुष्ठरोगमें, हृदयके रोगमें, प्रमेहरोगमें, अजीर्णरोगमें, भ्रमरोगमें, विदारिकामें, वृद्धहाजमें, खाँसीमें, दमामें, पीनसमें, वृद्धिरोगमें, अपस्माररोगमें, ज्वरमें, उन्मादमें, रक्तातिसारमें, नासा, तालू और ओठके पाकमें, कानके पहनेमें, अधिजिह्वरोगमें, फंठमालामें, अतिसारमें, पित्तश्लेष्माके रोगमें, भेदके रोगमें और अरुचिरोगमें वमनका प्रयोग किया जाय ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

न वामनीयस्तिमिरान्गुल्मीनोदरीऋशः ।

नातिवृद्धोगर्भिणीचनस्थूलोनक्षतातुरः ॥ २८ ॥

मदात्तोवालकोरूक्षःक्षुधितश्चनिरूहितः ।

उदावत्तोद्धरतीचदुश्छद्दर्यःकेवलानिली ॥ २९ ॥

पाण्डुरोगीक्रिमिव्याप्तःपठनात्स्वरघातकः ।

एतेप्यजीर्णव्यथितावम्यायेविपपीडिताः ।

कफव्याप्ताश्चतेवम्यामधुक्काथस्यपानतः ॥ ३० ॥

अर्थ—तिमिररोग, गुल्मरोग और उदररोगवालेको, दुर्बल, अतिवृद्ध, गर्भिणी, मोटे शरीरसे युक्त, क्षतरोगी, मदात्त, बालक, रूखीदेहवाला, भूखा और जिसको निरूहणक्रिया कराईगई है, उदावर्तमें, ऊर्द्धगतरक्तपित्तमें, वमन जिसको सहन न होसके, जिसकी वायु कुपित हुई है, पांडुरोगमें, क्रिमि-रोगमें, अधिक पढनेसे जिनका स्वरभंग हुआहै तिनको वमन-कारक औषधि न दे। जिनको यह रोगहैं यदि उनको अजीर्णरोग विपरोग और प्रचल कफरोग होतो मुलहठीका काथ पिलाकर वमन करावे ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

अन्यान्तरस्यान्यारस्तमात्रामाह ।

काथपानेनवप्रस्थाज्येष्टामात्राप्रकीर्त्तिता ।

मध्यमापण्मिताप्रोक्तात्रिप्रस्थाचकनीयसी ॥ ३१ ॥

अर्थ—वमनप्रयोगकेलिये मुलहठीका काथके जलपानकी प्रधानमात्रा नौ प्रस्थ, मध्यममात्रा छैः प्रस्थ और हीनमात्रा तीन प्रस्थ है (यहांपर १ प्रस्थसे साढेछय पल समझना चाहिये) ॥ ३१ ॥

प्रसङ्गादन्यौषधानाश्चमात्रामाह ।

कल्कचूर्णावलेहानांत्रिपलंश्रेष्ठमात्रया ।

मध्यमं हि पलं दद्यात्कनीयस्कंपलं भवेत् ॥ ३२ ॥

अर्थ-वमनप्रयोगके लिये औषधिका कल्क, चूर्ण और अव-
लेहकी श्रेष्ठमात्रा तीनपल, मध्यममात्रा दोपल और हीनमा-
त्रा एकपल है ॥ ३२ ॥

वमनेचापिवेगाःस्युरष्टौपित्तान्तउत्तमाः ।

पङ्केगामध्यमावेगाश्चत्वारोऽप्यवरामताः ॥ ३३ ॥

वमनेचविरेकेचतथाशोणितमोक्षणे ।

सार्द्धत्रयोदशपलंप्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥ ३४ ॥

अर्थ-आठवार वमनका वेगहो तो वह श्रेष्ठवेग कहा जाया-
करता है इसके पिछले वेगमें पित्त निकलता है । छःवार
वेगहो तो उसे मध्यमवेग और चारवार होतो उसे हीनवेग
कहते हैं; वमन, विरेचन और रक्तमोक्षणमें साठेछैः पलका
(५२ तो०) एक प्रस्थ पंडितोंने कहा है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कफंकटुकतीक्ष्णोष्णैःपित्तंस्वादुहिमैर्जयेत् ।

सुस्वादुलवणोष्णैश्चसंसृष्टंवायुनाकफम् ॥ ३५ ॥

इतिवमनम् ।

अर्थ-कटु, तीक्ष्ण और उष्णद्रव्यकरके कफ, मधुर और
शीतल द्रव्यसे पित्त, और मधुर, लवण गरमद्रव्यसे वायुसंयुक्त
कफ दब जाता है ॥ ३५ ॥

अथविरेचनमाह ।

(शार्ङ्गधरः)

स्निग्धस्विन्नस्यवान्तस्यदद्यात्सम्यग्विरेचनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ-शार्ङ्गधर कहता है कि स्निग्ध, स्वेद और वमनक्रिया-
के पीछे विरेचन कराये ॥ ३६ ॥

हास्यगुणमादसुश्रुतः ।

बुद्धेःप्रसादंवलमिन्द्रियाणां

धातुस्थिरत्वंज्वलनातिदीप्तिम् ।

चिराच्चपाकंवपुषःकरोति ।

विरेचनंसम्यगुपास्यमानम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—सुश्रुत कहता है कि भलीभांतिसे विरेचन होनेपर बुद्धि, बल और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता, धातुओंकी स्थिरता होती है। अग्नि, अत्यन्त दीप्त होती है और बहुतकालतक शरीरमें पक्वता उत्पन्न होती रहती है, ॥ ३७ ॥

अवान्तस्यत्वधःस्रस्तोग्रहणीच्छादयेत्कफः ।

मन्दाग्निर्गौरवंकुर्व्यान्नयेद्वाप्रवाहिकाम् ।

अथवापाचनैरामं वलासंचविपाचयेत् ।

“ग्रहणीअग्निवहधमनीतात्स्थ्यादग्निमाहुः

तच्छादयेदिति शेषः ॥ ३८ ॥

अर्थ—विनावमन कराये विरेचक औषधिका प्रयोग करनेसे कफ नीचेको जाय ग्रहणीनामक नाडीको ढकके मन्दाग्नि, देहमें भारीपन और प्रवाहिकारोगको उत्पन्न करता है। इसकारण पहले वमन करावै या पाचक औषधिसे आम कफको पकाकर फिर विरेचक औषधिका प्रयोगकरे ॥ ३८ ॥

स्निग्धस्यास्त्रेहनैः कार्यंस्वेदैःस्विन्नस्यरेचनम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—स्नेहवालेको रुखे द्रव्यसे और प्रस्वेदयुक्तको स्वेदकारी द्रव्यसे विरेचन करावै ॥ ३९ ॥

शरद्वर्तौ वसन्ते च देहशुद्धौ विशेषतः ॥ ४० ॥

अर्थ—शरद और वसन्त ऋतुमें शरीरको शुद्ध करनेके लिये विरेचनका प्रयोग अवश्य करना चाहिये ॥ ४० ॥

विरेकनिषेधमाह ।

बालवृद्धावतिस्लिग्धः क्षतक्षीणभयार्दितः ।

थ्रान्तस्तृषार्तः स्थूलश्वर्गाभिणीचनवज्वरी ॥ ४१ ॥

नवप्रसूतानारीचमन्दाग्निश्चमदात्ययी ।

शल्यार्दितश्चरूक्षश्चनविरेच्योभिपग्वरैः ॥ ४२ ॥

अर्थ—बालक, वृद्ध, अतिस्लिग्ध, क्षत, क्षीण, भययुक्त-
थकित, प्याससे आर्त, स्थूल, गर्भिणी, नवज्वरी, नई प्रसूती,
स्त्री, मन्दाग्नियुक्त, मदात्ययान्वित, शल्यपीडित और रूखे
पुरुषको विरेचन न करावै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

विरेच्यमाह ।

जीर्णज्वरीगरव्याप्तोवातरक्तीभगन्दरी ।

अर्शःपाण्डूदरग्रन्थिहृद्दोगारुचिपीडिताः ॥ ४३ ॥

योनिरोगप्रमेहार्तगुल्मप्लीहव्रणार्दिताः ।

विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविपूचीकुष्ठसंयुताः ॥ ४४ ॥

कर्णनासाशिरोवक्रगुदमेहामयार्दिताः ।

प्लीहशोथाक्षिरोगार्ताः क्रिमिरोगानिलादिताः ॥

शूलिनोमूत्रवातार्ताविरेकार्हानरामताः ॥ ४५ ॥

अर्थ—पुराने ज्वरसे घिरा, विषके दोषोंसे व्याप्त, वातरक्त,
भगन्दर, वयासीर, पाण्डु, उदर, ग्रन्थि, हृद्दोग, अरुचि,
योनिरोग, प्रमेह, गुल्म, तिल्ली, व्रण, वद, चर्म, विस्फोट,
विपूचिका, कुष्ठ, कर्णरोग, नासारोग, शिरारोग, मुखरोग,
गुल्मरोग, मेहके रोग, शोथ, नेत्ररोग, क्रिमिरोग, वायुसे उत्पन्न
दुर्द पीडा, शूल और मूत्राघात इन रोगियोंको विरेचन-
देना उचित है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

बहुपित्तोमृदुःप्रोक्तोबहुश्लेष्माचमध्यमः ।

बहुवातःक्रूरकोष्ठोदुर्विरेच्यःसकथ्यते ॥ ४६ ॥

अर्थ-बहुतसे पित्तवालेको मृदुकोष्ठ, बहुतसे श्लेष्मावालेको मध्यकोष्ठ और बहुतसे वातवालेको क्रूरकोष्ठ या दुर्विरेच्य कहाजाता है ॥ ४६ ॥

तस्यमात्रामाह ।

मात्रोत्तमाविरेकस्यत्रिंशद्वेगैःकफात्मकम् ।

वेगैर्विंशतिभिर्मध्याहीनोक्तादशवेगैः ॥ ४७ ॥

द्विपलंश्रेष्ठमाख्यातंमध्यमञ्चपलंभवेत् ।

पलार्द्धचकपायाणांकनीयस्कंविरेचनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ-जितनी औषधिका सेवन करनेसे तीस दस्त हों तिसको श्रेष्ठमात्रा कहते हैं, विरेचक औषधिकि जितनी मात्रा से २० दस्तहों तिसको मध्यम मात्रा और जिस विरेचक औषधिकि मात्राका सेवन करनेसे १० दस्तहों तिसको हीन मात्रा कहते हैं । विरेचक औषधिकी श्रेष्ठमात्रा दो पल, मध्यममात्रा एक पल और हीनमात्रामें अर्द्ध पल देनेका विधान है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

आनन्दसेनम्वाह ।

पित्तेनस्यान्मृदुःकोष्ठःक्रूरोवातकफाश्रयात् ।

मध्यमःसमदोषःस्यान्मात्रायोज्यानुरूपतः ॥ ४९ ॥

पलन्तुश्रेष्ठमाख्यातंमध्यमन्त्वष्टपलंभवेत् ।

कर्पमानंकनीयःस्याज्ज्ञेयंश्रेष्ठाद्यपेक्षया ॥ ५० ॥

अर्थ-आनन्दसेन कहता है कि, पित्तकी अधिकाई होनेसे मृदुकोष्ठ, कफमिली वायुकी अधिकाईसे क्रूरकोष्ठ और दोष-

की समताके हेतु मध्यकोष्ठ होता है । इस कारण कोष्ठभेदसे विरेचक औषधिकी मात्रा योग्यतासे प्रयोग करे विरेचक औषधीकी प्रधानमात्रा १ पल, मध्यममात्रा अर्द्धपल और हीनमात्रा एक कर्ष (२ तो०) है । अतएव श्रेष्ठ और मध्यमादिका विचारकरके विरेचक औषधिकी मात्रा प्रयोगकरै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

यमनविरेकयोश्चतुर्द्धांविशुद्धिमाह ।

वैनिकीमाणिकाचापिअम्भकीनलिकीतथा ।

चतुर्विधाशुद्धिरुक्तावमनेचविरेचने ॥ ५१ ॥

अर्थ—यमन और विरेचनकी विशुद्धि चार प्रकारकी है, यथा, वैनिकी, माणिक्य, अम्भकी और नलिकी ॥ ५१ ॥

जघन्यमध्यप्रवरेतुवेगाश्चत्वारइष्टावमनेपडष्टौ ।

दशैवतोद्वित्रिगुणाविरेकेप्रस्थस्तथाद्वित्रिचतुर्गुणाश्च ५२

अर्थ—चार बार यमन होनेको जघन्यवेग कहते हैं, छयवार यमन होनेको मध्यवेग और आठवार यमन होनेको श्रेष्ठ वेग कहते हैं । विरेचक औषधिसे दश बार विरेचन हो तो उसे हीनवेग, बीसदस्तहों तो मध्यवेग और ३० दस्तहों तो उसे श्रेष्ठ वेग कहते हैं । हीनवेगमें द्विगुण प्रस्थ, मध्यवेगमें त्रिगुण प्रस्थ और श्रेष्ठवेगमें चतुर्गुणप्रस्थका प्रयोग करना चाहिये ॥ ५२ ॥

१ जघन्यमिति जघन्ये यमने चत्वारो वेगाः मध्ये चत्वारो वेगाः प्रवरेतुवेगाः तथाच जघन्यविरेके दश वेगाः मध्यमे विरेके दशद्विगुणाः विशति-
त्रिगुणं । प्रचरे श्रेष्ठे विरेके दशत्रिगुणास्त्रिगुणा इत्यर्थः । विरेके दोषमाने-
नापि जघन्यादित्यमाहुः । मध्य इत्यादि । द्विगुणप्रस्था जघन्ये, द्विगुणा
मध्यमे, चतुर्गुणः प्रचरे इत्यर्थः । पित्तान्तमिति । अत्यन्तिका शुद्धिर्द्विगुणा-
र्द्धं भेषजमापया फार्या, विरेके पत्रशर्षादिना जघन्यत्यमुक्तं तदर्ध
परिमाणेन जघन्यादित्यमपरं यमने होयम् । फफान्तमिति । अतिरेकेना-
त्यन्तिका शुद्धिदत्ता ।

पित्तान्तमिष्टं वमनं कफान्तं विरेचनम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—जो वमनके पिछले वेगमें पित्त निकले और विरेचनके पिछले दस्तमें जो कफ निकले, तो वमन और विरेचनकी क्रियाको भलोभांतिसे सिद्ध हुआ जानें ॥ ५३ ॥

विरेकमाह ।

द्वित्रान्सविट्कानपनीयवेगान्

मेयं विरेके वमने तु पीतम् ॥

क्रमात्कफः पित्तमथानिलश्च

यस्येति सम्यग् वामितः सङ्घट्टः ॥ ५४ ॥

अर्थ—विरेचनके दो या तीन वेग छोड़कर (अर्थात् पहले दिनके आहारके मलका परिमाण दो या तीन बार हे गिनें । और वमनके लिये औषधकी जितनी मात्रा दी जाती है, सो वमनके पहले वेगमें ही गिर जाती है, वस उसको छोड़कर गिनें ॥ ५४ ॥

हृत्पार्श्वमूर्ध्नेन्द्रियमार्गशुद्धौ

तनोर्लघुत्वेऽपि चलक्ष्यमाणे ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो वमनके करनेवालेके क्रमानुसार कफ, पित्त और वायु निकले और, हृदय, वगल, मस्तक और इन्द्रियों-

१ विरेके द्वित्रान् सविट्कान् वेगान् अपनीय त्यक्त्वा मेयं गणनीयं परिमाणं कार्यं, विरेकसंख्या कर्तव्येत्यर्थः । तथा वमने पीतमौषधमपनीय मानं कर्तव्यम् । वेगानामित्यर्थः । विरेके इति । पूर्वदिनाहारमल-विरेकात् प्रथमतः वेगद्वयं त्रयं वा परित्यज्य संख्या कर्तव्या इति । वमनेऽपि पीतमौषधे प्रथमवेगेन यद्विनिःसरति, अतस्तत्र गणनीयमतोजनन्तरं संख्या कार्याति दिक् ।

के सोते शुद्ध हों जाय, शरीर हलका होजाय, तो वमन-
क्रियाको भलीभांतिसे हुआ जानें ॥ ५५ ॥

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसम्प्रसादौ ;

लघुत्वमूर्जोऽग्निरनामयत्वम् ॥

प्राप्तिश्च विट्पित्तकफानिलानां ।

सम्यग्विरिक्तस्य भवेत्क्रमेण ॥ ५६ ॥

“ प्राप्तिरिति प्रवृत्तिरित्यर्थः ”

अर्थ—जिसका जुलाब ठीक हो जाता है उसके सोते शुद्ध,
इन्द्रियें निर्मल, देहमें हलकापन, अग्निका उकसना, शरीरका
स्वस्थपन होता है । और मल, वायु, पित्त और कफकी उचि-
त प्रवृत्ति होती है ॥ ५६ ॥

स्याच्छेष्मपित्तानिलसंप्रकोपः

सादस्तथाग्नेर्गुरुताप्रतिश्या ॥

तन्द्रा तथा छर्दि ररोचकश्च ।

वातानुलोम्यं च न चैर्विरक्तेः (?) ॥ ५७ ॥

अर्थ—भलीभांतिसे विरेचन न हो, तो कफ, पित्त और
वायुका कोप, मन्दाग्नि, शरीरका भारीपन, जुकाम, तन्द्रा,
वमन, अरुचि होकर वायु, कुपित हो जाती है ॥ ५७ ॥

कफास्रपित्तक्षयजाऽनिलोत्थाः ।

सुप्त्यङ्गमर्दकुमवेपनाद्याः ॥

निद्रावलाभावतमः प्रवेशाः ।

सोन्मादहिक्काश्च विरेचितेऽति ॥ ५८ ॥

अर्थ—अधिक विरेचन होनेसे कफ, रक्त, पित्त, क्षय
और वायुसे उत्पन्न हुए रोगमें अंगका अवसाद, शरीरमें

पीडा, क्लान्ति, कम्प, नाँद, बलकी हानि, अन्धकार दीखना और उन्मादकी देखना व हिचकीरोग उत्पन्न होता है ॥५८॥

विरेकनिषेधमाह ।

क्षीणःक्षतोरःक्षतवालवृद्धा-
दीनोऽथशोषोभयशोकतप्तः ॥
श्रान्तस्तृपात्तोपरिजीर्णभोक्ता
गर्भिण्यधोगच्छतियस्यचासृक् ॥ ५९ ॥
नवप्रतिश्यायपरीतदेहो
नवज्वरीयाचनवप्रसूता ॥
कपायनिष्ठानविरेचनीयाः
स्नेहादिभिर्येत्वनुपस्कृताश्च ॥ ६० ॥

अर्थ-क्षीण, क्षत, उरक्षत, वालक, बूढ़ा, दीन, शोथ, भीत, शोकयुक्त, थके हुए और प्यासेकी और जिसको आहार नहीं पचता, अधोगामी, रक्तपित्तरोगी, नये जुकामवालेको, शराश-खोर, नवज्वरी, थोड़े दिनकी जच्चा स्त्री, सदा कपायका सेवी और स्नेहादि करके अनुपकारी रोगी विरेचनके योग्य नहीं है । वस इनपर विरेचनका प्रयोग न करे ॥ ५९ ॥ ६० ॥

विरेचनैर्यान्तिनराविनाश-
मज्ञप्रयुक्तैरविरेचनीयाः ॥
एतेनपित्तेनपरीतदेहान् ।
विरेचयेत्तानपिमन्दमन्दम् ॥ ६१ ॥

अर्थ-अज्ञान करके जो विरेचनके योग्यहो और उसे विरेचन कराया जायतो प्राणका नाश होजाता है, परन्तु

अत्यन्त बडे हुए पित्तसे आक्रान्त हुएको मृदुविरेचक औष-
धिसे विरेच न करावै ॥ ६१ ॥

अथनस्यमाह ।

नस्यभेदोद्विधाप्रोक्तोरेचनंस्नेहणंतथा ।

रेचनंकर्षणंप्रोक्तंस्नेहनंबृंहणमतम् ॥ ६२ ॥

नस्यंतत्कथ्यतेधीरैर्नासाग्राह्यंयदौषधम् ।

नावणंनस्तकर्मोतितस्यनामद्वयमतम् ।

“रेचनंकफादीनामित्यर्थः” ॥ ६३ ॥

अर्थ—नास दो प्रकारके हैं यथा रेचन और स्नेहन । ति-
नमें रेचन नस्य कर्षणकारक और स्नेहन नस्य बृंहण-
कारकहै । नासिकासे धीरे २ जो औषधि ग्रहण कीजातीहै
तिसको नस्य कहतेहैं । उसके दो नामहैं, नावण और
नस्यकर्म ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

कफपित्तानिलध्वंसेपूर्वमध्येऽपराह्लिके ।

दिनस्यगृह्यतेनस्यंरात्रावप्युत्कटेगदे ॥ ६४ ॥

अर्थ—कफकी शान्तिकेलिये प्रातःकालमें, पित्तकी शान्तिके
लिये मध्याह्नकालमें और वायुकी शान्तिके लिये अप-
राह्नमें नस्यका प्रयोग करे; परन्तु कठोर रोग होनेपर रा-
त्रिमेंभी नस्यका प्रयोग किया जासकताहै ॥ ६४ ॥

अन्यच्च ।

प्रतिमर्षोऽवपीडश्चनस्यंप्रथमनंतथा ।

शिरोविरेचनञ्चैवनस्तकर्मर्तुपंचधा ॥ ६५ ॥

ईपदुच्छिद्यनात्स्नेहोयावद्वैकंप्रपद्यते ।

सस्तोनिपित्तस्तंविद्यात्प्रतिमर्पप्रमाणतः ॥

प्रतिमर्पचनस्यार्थकरोतिनचदोषभाक् ॥ ६६ ॥

अर्थ—पांच प्रकारके नस्यकर्महैं यथा—प्रतिमर्प, अव-
पीड, नस्य, प्रथमन और शिरोविरेचन । स्नेहवस्तु
(तैलादि) नासिकाके छेदमें घुसाके उपरकी सांस खेंच-
कर मुखसे निकाले तिसको प्रतिमर्प कहतेहैं । योग्यमा-
त्रासे प्रतिमर्पका प्रयोग करना चाहिये । स्नेहन और
शोधन दोनों प्रकारके प्रयोजन दोषमूल न होवें, इस प्रकारसे
प्रतिमर्पका प्रयोग होना चाहिये ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

शोधनंस्तम्भनं तस्मादवपीडोद्विधामतः ।

आपीड्यदीयते यस्मादवपीडस्ततः स्मृतः ॥ ६७ ॥

अर्थ—अवपीड दो प्रकारकेहैं, यथा—शोधन और स्तम्भन ।
पत्रादिके निकाले हुए रससे जो नस्य प्रयोग किया जाता है,
तिसको अवपीड कहतेहैं ॥ ६७ ॥

स्नेहार्थं शून्यशिरसां ग्रीवास्कन्धोरसां तथा ।

बलार्थं दीयते स्नेहो नस्तः सर्वत्र वर्त्तते ॥ ६८ ॥

अर्थ—स्नेहरहित मस्तकमें स्नेह करनेके अर्थ और गर-
दन स्कंधा व छातीका बल बढ़ानेके लिये जो स्नेहप्रयोग
किया जाता है तिसको नस्य कहतेहैं ॥ ६८ ॥

अन्यच्च ।

अवपीडः प्रथमनं द्रौभेदावपरौ स्मृतौ ।

शिरोविरेचनस्यार्थं तौ तु देयौ यथा यथम् ॥ ६९ ॥

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निष्णु तो रसः ।

सोऽवपीडः समुदिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ ७० ॥

अर्थ-नस्यके और दो प्रकारके भेदहैं, यथा-अवपीड और प्रथमन शिरके विरेचनको यथायोग्य मात्रासे इनका प्रयोग करे । तीक्ष्ण औषधि कूटकर रस निकाले, फिर यह रस नस्यके लिये प्रयोग करे, तिसको अवपीड कहतेहैं ॥ ६९॥ ७० ॥

पङ्गुलाद्विवक्रायानाडीचूर्णयथाधमेत् ।

तीक्ष्णंकोलमितंवक्रंवातैःप्रथमनंस्मृतम् ॥ ७१ ॥

अर्थ-छैःअंगुल लंबे दो सुखवाले खाली नलमें तीक्ष्ण औषधिका चूर्ण एकतोला भरकर फूंकसे नाकमें घुसावै, इसको प्रथमन कहतेहैं ॥ ७१ ॥

ऊर्ध्वजन्तुगतैरोगैकफजेचस्वरक्षये ।

अरोचकेप्रतिश्यायोशिरःशूलेचपीनसे ॥

शोथापस्मारकुष्ठेपुनस्यवैरेचनंहितम् ॥ ७२ ॥

अर्थ-ऊर्ध्वजन्तुगतैरोगमें, कफसे उत्पन्न हुए स्वरभंगमें, अरु-चीरोगमें, जुकाममें, शिरके दर्दमें, पीनस, शोथ, मिरगी और कुष्ठ इन सवैरोगोंमें रेचन नस्यका प्रयोगकरे ॥ ७२ ॥

भीरुस्त्रिकृशवालानानस्यस्नेहेनशस्यते ॥ ७३ ॥

अर्थ-डराहुआ, स्त्री, दुर्बल और बालक इनके लिये स्नेहन नस्यप्रयोग करना चाहिये ॥ ७३ ॥

गलरोगेसन्निपातोनिद्रायांसविपेज्वरे ।

मनोविकारेकृमिपुयुज्यतेचावपीडनम् ॥ ७४ ॥

अर्थ-गलेके रोगमें, सन्निपातमें, नींदकी अवस्थामें, विषम-ज्वरमें, उन्मादादि मनके विकारमें और कृमिरोगमें, अवपीडनस्य देना चाहिये ॥ ७४ ॥

अत्यन्तोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते ।

चूर्णप्रधमनंधीरैस्ताद्वितीक्ष्णतरं यतः ॥ ७५ ॥

अर्थ-अत्यन्त प्रबल दोष और अचेतन अवस्थामें चूर्ण औषधी नस्यमें धीरे २ से प्रयोग करे; क्योंकि वह अत्यन्त तीक्ष्ण है । इससे शीघ्रही उपकार दिखाई देता है ॥ ७५ ॥

नस्यस्य स्नेहिकस्यात्र देयास्त्वष्टौ च विन्दवः ।

प्रत्येकशोनस्तकर्मनृणामिति विनिश्चयः ॥ ७६ ॥

अर्थ-स्नेहन नस्यकी मात्रा आठ बूंद है, इस प्रकारसे मनुष्योंका प्रत्येक नस्यकर्म वर्णन किया गया ॥ ७६ ॥

अष्टवर्षस्य बालस्य नस्तकर्म समाचरेत् ।

अशीतिवर्षादूर्ध्वश्च नावर्णनैव दीयते ॥ ७७ ॥

अर्थ-आठ वर्षसे कम उमरके बालकको और ८० वर्षसे अधिक उमरवालेको नस्य न दे ॥ ७७ ॥

निषेधमाह ।

तथानवप्रतिश्यायी गर्भिणी गिरदूषितः ।

अजीर्णादित्तवास्ति श्वपीतस्नेहोदकासवः ॥ ७८ ॥

क्रुद्धः शोकाभितप्तश्च तृपात्तौ वृद्धबालकौ ।

वेगावरोधी स्नातश्च श्रान्तकामश्च वर्जयेत् ॥ ७९ ॥

इति नस्यम् ।

अर्थ-जिसको नया जुकाम हुआ हो, गर्भिणी, विषदोषसे युक्त, अजीर्णरोगी, जिसने पिचकारीका कर्म किया हो, स्नेह, जल, या आसवादिका पीनेवाला, क्रोधयुक्त, शोकाकुल, तृष्णासे आर्त, वृद्ध, बालक और वेगका (मलमूत्रके वेगका) रोकने-

वाला, नहायाहुआ, थकाहुआ, जिसको कामका उदय हुआहो, ऐसोंको नस्य नहीं देना चाहिये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथानुवासनमाह ।

भवेत्सुखोष्णश्चतथानिरेतिसहसासुखम् ।

विरिक्तस्त्वनुवास्यात्सप्तसप्तरात्रात्परंतदा ॥ ८० ॥

अर्थ—कुछेक गरम अवस्थामें अनुवासनका प्रयोग करनेसे सहसा निकल जाता है, विरेचन प्रयोगके सातदिन पीछे अनुवासनका प्रयोगकरै ॥ ८० ॥

अन्यत्रचोक्तम् ।

विरेचनात्सप्तरात्रेगतेजातवलायवै ।

कृताहारायसायाह्वेवस्तिज्ञेयोऽनुवासनः ॥ ८१ ॥

“ अनुदिनंदीयतेइत्यनुवासनः ” ।

अर्थ—विरेचनके बाद ७ रात्रि बीत जानेपर जब शरीरमें बल आजाय तब भोजन कराके सायंकालमें अनुवासन वस्तिप्रयोग करे । अनुदिन (प्रतीदिन) इसका प्रयोग करना होताहै, इस्से इसको अनुवासन कहतेहैं ॥ ८१ ॥

सुवर्णरौप्यत्रपुताम्ररीति-

कांस्यायसास्थिद्रुमवेणुदन्तैः ॥

नलैर्विपाणैर्मणिभिस्ततस्तैः

कार्याणिनेत्राणिसुकर्णिकानि ॥ ८२ ॥

पद्मद्वादशांगुलसम्मितानि

पद्मविंशतिद्वादशवर्षजानाम् ॥

स्युर्मुद्गकर्कन्धुसतीलवाहि

छिद्रानिवस्तैःपिहितानिचापि ॥ ८३ ॥

यथावयोंऽंगुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां
मूलाग्रयोःस्युःपरिनावहन्ति ॥
ऋजूनिगोपुच्छसमाकृतीनि
शुष्णानिचस्युर्गुडिकामुखानि ॥ ८४ ॥
स्यात्कर्णिकेकाग्रचतुर्थभागे
मूलाश्रितेवस्तिनिबन्धनेद्वे ॥ ८५ ॥

अर्थ—सौना, चांदी, सीसा, तांबा, पीतल, कांसी, लोहा, हड्डी, फाट, बांश, दांत नल, सींग अथवा मणिआदिसे श्रेष्ठ कर्णिका है आगे जिसको ऐसा नलवनावैठेवर्षकी टमर वालेके लिये छैः अंगुलका, बीसवर्षकी टमरवालेके लिये १२ अंगुलका और बारहवर्षकी टमर वालेके लिये आठ अंगुलका लम्बा नल बनावै । छैः अंगुलके नलमें भूंगकी समान, १२ अंगुलके नलमें बैरकी समान और आठ अंगुलके नलमें मटरके दानोंकी समान छेद करके वर्त्तीसे तिसका मुंह ढकै । इसका पारिमाण रोगके आकारकी अनुसार उसके अंगुठेकी समान व्यासमूलभागमें स्थिर रखके कमंडगलीकी समान नोक बनावै, उसनोकको सीधा गायटुम करे । मुख अत्यन्त चिकना गोलीकी समान गोलहो । इसके आगेके चौपाई अंशमें एक कर्णिका और मूलाश्रित वस्ति बांधनेके भागमें दो कर्णिकाओंको बनाना चाहिये ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

जारद्रवोमाहिपहारिणोवा
स्यात्शोकोवस्तिरजस्यवापि ॥
दृढस्तनुर्नष्टशिरोविगन्धः
कपायरक्तश्चमृदुःसुशुद्धः ॥

नृणांवयोवीक्ष्ययथानुरूपं

नेत्रेपुयोज्यस्तुसुवद्धसूत्रः ॥ ८६ ॥

अर्थ-बूढाबैल, भैंसा, हारिण, शूकर, अथवा छागलके अंड-कोषका दृढचर्म पतलो करे और शिरा (नस) आदिछोड़कर गन्ध हीनकरे । फिर कषायद्रव्यसे रंगकर मृदु और शुद्धकरे । रोगीकी उमरके अनुसार घृषादिका वस्तिचर्म योग्यतासे ग्रहण करके नलीमें सूतसे बांधे ॥ ८६ ॥

अन्यच्च ।

वस्तिस्तुक्षीरतैलैर्योनिरूहःसनिगद्यते ।

वस्तिभिर्दीयतेयस्मात्तस्माद्वस्तिरितिस्मृतः ॥ ८७ ॥

अर्थ-दूध और तेलसे जिस वस्तुका प्रयोग किया जाता है, तिसको निरूह कहते हैं, वस्तिसे प्रयोग किया जाता है इस कारण उसको वस्ति कहा जाता है ॥ ८७ ॥

तत्रानुवासनाख्योऽहिवस्तिर्यःसोऽत्रकथ्यते ।

पूर्वमेवततोवस्तिर्निरूहाख्योभविष्यति ॥ ८८ ॥

निरूहादुत्तरश्चैववस्तिःस्यादुत्तराभिधः ।

अनुवासनभेदश्चमात्रावस्तिरुदीरितः ॥ ८९ ॥

पलद्वयंतस्यमात्रातस्मादद्धौऽपिवाभवेत् ।

अनुवास्यस्तुरूक्षःस्यात्तीक्ष्णाग्निःकेवलानिली ९०

अर्थ-अनुवासननामक वस्ति कही जाती है । पहले पूर्व वस्तिफे पीछे निरूह वस्ति और फिर उत्तरवस्ति का प्रयोग करे । अनुवासनका भेद मात्रावस्ति है, इसकी मात्रा २ पल है । या इसे आधी मात्रा प्रयोग करे । रूखा, तेज अधिवाला और जिनके केवल वायु प्रबल है, वे अनुवासनके योग्य हैं ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

नानुवास्यस्तुंकुष्ठोस्यान्मेहीस्थूलस्तथोदरो ।

नास्थाप्यानानुवास्याःस्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः ॥

शोथमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षयातुराः ॥ ९१ ॥

अर्थ—कोढ़, प्रमेह, भेद और उदररोगवाले अनुवासन-
क्रियाके अयोग्य हैं । अजीर्ण, उन्माद, प्यास, शोथ, मूर्च्छा,
अरुचि, भय, दमा, खांसी और क्षयरोगवालोंकोभी अ-
नुवासन और आस्थापन मने है ॥ ९१ ॥

नेत्रंकार्यसुवर्णादिधातुभिवृक्षवेणुभिः ।

नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वाविधीयते ॥ ९२ ॥

अर्थ—सुवर्णादि धातु, वृक्ष, वांश, नल, दांत, सींगका अग्र-
भाग और मणि आदिका नल बनावै ॥ ९२ ॥

एकवर्षात्तुषट्शतवर्षयावन्मात्रापङ्गुलम् ।

ततोद्वादशकंयावन्मानंस्यादष्टसम्मितम् ॥

ततःपरंद्वादशभिरङ्गुलैर्नैत्रैर्दीर्घता ॥ ९३ ॥

मुद्गच्छिद्रं कलायाभंछिद्रंकोलास्थिरन्ध्रकम् ॥

यथासंख्यंभवेत्त्रैत्रंशुक्ष्णंगोपुच्छसन्निभम् ॥ ९४ ॥

अर्थ—वस्तिक्रियाके लिये एकसे लेकर छैःवर्षतक छैः
अङ्गुलका, बारह वर्षतक ८ अङ्गुलका और तिस्से आगे १२
अङ्गुलका लम्बा नल बनावै । छय अङ्गुलके नलका छेद मू-
गकी समान, आठ अङ्गुलके नलका मटरकी समान और
तिस्से ऊपर घेरकी गुठलीके समान करे । नल योग्यतानु-
सार मनोहर और गावदुमकरे ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

आतुराङ्गुष्ठमानेनमूलेस्थूलंविधीयते ।

कनिष्ठिकापरीणाहमग्रेचगुडिकामुखम् ॥ ९५ ॥

तन्मूलेकर्णिकेद्वेचकार्येभागाच्चतुर्थकात् ।

योजयेत्तत्रवस्तिवन्धद्वयविधानतः ॥ ९६ ॥

अर्थ-वस्तिक्रियाका नल आतुरपुरूपके अंगूठेकी समान व्यास नलीके मूलमें स्थूल रखकर, कनउंगलीके समान व्यासवाला अग्रभाग (नोक) बनावै और मुख अत्यन्त चिकना, गोलीकी समान गोल करके नलीके चौथे भागमें ऐसी कर्णिका बनावै जिसे वस्तीके जोर करके नलका अग्रमाण अंश भीतरेकी और न घुस आवै । और मूलकी और चौथे भागमें वस्तिबांधनेके लिये दो कर्णिका बनावै ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

मृगाजशूकरगवामहिपस्यापिवाभवेत् ।

मूत्रकोपस्यवस्तिस्तुतदलाभेनचर्मजः ॥

कपायरक्तःसमृदुर्वस्तिःस्निग्धोदढोहितः ॥ ९७ ॥

अर्थ-हरिण, छाग, शूकर, बैल, अथवा भैंसेका मूत्रकोप वस्तिक्रियामें श्रेष्ठ है, यह न हो, तो चमड़ेकी बनी वस्तिसे कार्य करे । वस्तिको कपायादिसे रंगले । इसका मुलायम चिकना और मजबूत होना जरूरी है ॥ ९७ ॥

व्रणवस्तेस्तुनेत्रस्याच्छृङ्गमष्टाङ्गुलान्मितम् ।

मृदुच्छिद्रंगृध्रपक्षिनलिकापरिणाहिच ॥ ९८ ॥

अर्थ-व्रण (पाव-या फोड़ा) में वस्तिका प्रयोग करनाहो तो उसका नल मनोहर, आठ अंगुलके व्यासका गोधपक्षीकी नलीके समान और मृदुछेदवाला बनावै ॥ ९८ ॥

शरीरोपचयंवर्णवलमारोग्यमायुषः ।

कुरुतेपरिवृद्धिचवस्तिःसम्यगुपासितः ॥ ९९ ॥

अर्थ-जय मलीभातिसे वस्तीका प्रयोग होजाय तो

शरीरकी वृद्धि, बलवृद्धि; रंगकी प्रसन्नता, आरोग्य और परमायुकी वृद्धि होती है ॥ ९९ ॥

दिवाशीतेवसन्तेचस्नेहवस्तिःप्रदीयते ।

ग्रीष्मवर्षाशरत्कालेरात्रौस्यादनुवासनम् ॥१००॥

अर्थ—शीत और वसन्तकालमें दिनके समय स्नेह वस्ति और ग्रीष्म, वर्षा और शरत्कालके समय रात्रिमें अनुवासनका प्रयोग करे ॥ १०० ॥

नचातिस्लिग्धश्मनंभोजयित्वानुवासयेत् ।

मदमूर्च्छाञ्चजनयेद्विधास्नेहप्रयोजितः॥१०१॥

अर्थ—अत्यन्त स्निग्धद्रव्य भोजनकराके अनुवासनका प्रयोग न करे । दो प्रकारके स्नेहसे वस्ति का प्रयोग करनेपर मत्तता और मूर्च्छारोग उत्पन्न होता है ॥ १०१ ॥

हीनमात्रावुभौवस्तीनातिकार्यकरौस्मृतौ ।

अतिमात्रौतथानाहकृमातीसारकारकौ॥१०२॥

अर्थ—दोनों प्रकारकी वस्ति की हीन मात्रा अच्छी नहीं, तिस्से कार्य नहीं होता, अतिमात्राका प्रयोग करनेसे उपकार नहीं होता और आनाह (अफारा) क्लान्ति व अतिसारका रोग उत्पन्न होता है ॥ १०२ ॥

उत्तमस्यपलैःषड्भिर्मध्यमस्यपलैस्त्रिभिः ।

पलद्वयेनहीनास्यादुक्तामात्रानुवासने ॥ १०३ ॥

अर्थ—अनुवासनकी श्रेष्ठमात्रा ६ पल, मध्यम मात्रा तीन पल और हीन मात्रा २ पल है ॥ १०३ ॥

अन्यच्च ।

निरूहमात्राप्रथमेप्रकुञ्चोवत्सरेपरम् ।

प्रकुञ्चवृद्धिःप्रत्यद्वयावत्पट्प्रसृतास्ततः ॥

प्रसृतं वर्द्धयेद्वृद्धैर्द्वादशाष्टादशस्य तु ।

आसप्ततेरिदं मानं दशैवं प्रसृतापरम् ॥ १०४ ॥

अर्थ—प्रथम वर्षमें निरूहकी मात्रा एकपल, फिर प्रत्येक वर्षमें एक २ पल मात्रा बढ़ाकर १२ वर्षमें १२ पलतक मात्रा बढ़ावै । १२ वर्षके पीछे १८ वर्षतक प्रतिवर्षमें २ पल मात्रा बढ़ावै । फिर सत्तरवर्षतक इतनी ही मात्राका प्रयोग करे । फिर क्रमानुसार २० पल मात्रा घटादे ॥ १०४ ॥

यथायथं निरूहस्य पादो मात्रानुवासने ।

सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्राप्नोति यस्य वै ॥ १०५ ॥

विना पीडां त्रियामस्थः स सम्यगनुवासितः ।

विष्टब्धानिलविण्मूत्रः स्नेहो हर्षोऽनुवासने ॥

दाहकुमपि पासार्षात्पित्तकरश्चात्यनुवासने ॥ १०६ ॥

अर्थ—यथायोग्यसे निरूहकी मात्राका चौथाई अंश अनुवासनमें प्रयोग करे । भलीभांतिसे अनुवासनक्रिया सिद्ध होजाय तो तीन पहरके बीचमें वायु और मलके साथ स्नेह निकल जाता है । जो अनुवासनक्रियामें भलीभांतिसे स्नेह न हो तो वायु, मूत्र और मलकी रोक होती है । ठीक अनुवासन न हो, दाह, श्रम और प्यास उत्पन्न होती है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

स्नेहात्पित्तकफोत्कृष्टो निरूहात्पवनाद्भयम् ।

स्नेदवास्तं निरूहं वानैकमेवातिशीलयेत् ॥ १०७ ॥

अर्थ—स्नेह वस्ति या निरूहणक्रिया इनमेंसे सदा किसीका अभ्यास न करे । क्योंकि सदा स्नेहवस्तिका प्रयोग पित्त और

कफका उत्क्लेदकारी है । सदा निरुहणक्रियाका अभ्यास करना वायुको बढ़ानेवाला है ॥ १०७ ॥

अनास्थाप्यायेऽभिधेयानानुवास्याश्चतेमताः ।

विशेषतस्तमीपाण्डुकामलामेहपीनसाः ॥

निरन्नप्लीहाविड्भेदीगुरुकोष्ठकफोदराः ॥ १०८ ॥

अभिप्यन्दभृशस्थूलकृमिकोष्ठाढ्यमारुतः ॥

पीतेविपेगरेऽपच्यांश्लीपदीगलगण्डवान् १०९ ॥

अर्थ—आस्थापनमें असमर्थ पुरुष अनुवासनक्रियाकेभी अयोग्य है। पाण्डु, कामला, मेह पीनस, निराहारी, तिल्ली, मल-भेद, गुरुकोष्ठ, कफोदर और अभिप्यन्द (आस्त्राव) रोगमें घिरा, अतिस्थूल, जिसके कोष्ठमें कीड़ेहों, ऊरुस्तम्भ, विषभोजी गरदोष, अपची, पाँवसूजना और कंठमालाके रोगियोंपर अनुवासनका प्रयोग न करे ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

अनास्थाप्यास्त्वतिस्निग्धः क्षतोरस्कभृशंकृशः ।

आमातिसारीवमिवान्संशुद्धौदत्तनावनः ॥ ११० ॥

श्वासकासप्रसेकाशोहिक्काध्मानाल्पवह्नयः ।

पायुशूलः कृताहारोवद्धच्छिद्रोदकोदरी ॥

कुष्ठीचमधुमेहीचमासान्सप्तचर्माग्निणी ॥ १११ ॥

अर्थ—अतिस्निग्ध, क्षतोरस्क, अत्यन्त दुर्बल, आमातिसारी, वमिरोगवाला, संशुद्ध, नस्यप्रयोगित और दमा, खाँसी, प्रसेक ववासीर, हिचकी, अफारा, मन्दामि, गुह्यशूल, भोजनकारी बद्धोदर, छिद्रोदर, जलोदर, कोढ़, मधुमेहरोगवाला और सात मासकी गर्भिणीपर आस्थापनप्रयोग न करे ॥ ११० ॥ १११ ॥

नचैकान्तेननिर्दिष्टेप्यत्राभिनिविशेदुधः ।

भवेत्कदाचित्काय्यापिविरुद्धाऽभिमताक्रिया ११२

छर्दिहृद्रोगगुल्मात्तौवमनस्वेचिकित्सिते ।

अवस्थांप्राप्यनिर्दिष्टंवस्तिकर्मचयोजयेत् ॥ ११३

इत्यनुवाचनम् ।

अर्थ—पहले कही हुई रीतीसे अयोग्य क्रिया निषिद्ध होनेपर भी कभी २ किसी खासरोग और खास अवस्थामें निषिद्ध क्रियाकाभी प्रयोजन होताहै । जैसे वमि, हृद्रोग और गुल्म-रोगमें वमन और कुष्ठरोगमें वस्तिकर्म साधारण करके निषेधित होने परभी अपने २ चिकित्साके स्थानमें तिनकी प्रयोगविधि उचित रूपसे है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

अथनिरुहमाह ।

अनुवास्यस्निग्धतरंतृतीयेऽह्निनिरुहयेत् ।

मध्याह्नेकिंचिदावृत्तेप्रयुक्तेवलिमंगले ॥ ११४ ॥

अभ्यक्तस्वेदितोत्तमृष्टमलंनातिबुभुक्षितम् ।

तृतीयेऽह्निप्रायोवादात्पंचमेप्यह्निक्रियते ॥ ११५ ॥

“निरुहयेदितिदोषनिर्हरोदित्यर्थः”

अर्थ—अनुवासनके पीछे अधिक स्निग्ध शरीरमें तीसरे दिन निरुहणकी क्रिया करे । मध्याह्नसमयके कुछ काल पीछे मांगलिक वलि देकर, जो बहुत भूखा न हो ऐसा मनुष्य मल त्याग करके शरीरमें स्नेह मर्दन और स्वेदप्रदान करे । अनुवासनके पीछे निरुहणक्रिया तीसरे अथवा पांचवे दिनभी कीजा सकती है ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

यदाहवाग्भटः ।

पंचमेऽथतृतीयेवादिवसेसाधकेशुभे ॥ ११६ ॥

अर्थ—वाग्भटने कहा है कि अनुवासनके पीछे पांचवे अथवा तीसरे दिन शुभ क्षणमें निरूहण करावै ॥ ११६ ॥

अतएवाहसुश्रुतः ।

सदोपहरणाच्छरीररोगहरणाद्रानिरूहइति ।

अस्यास्थापनमित्यपिनाम । वयःस्थापनादायु-
स्थापनाद्वाआस्थापनमितिसुश्रुतएव ॥११७॥

अर्थ—सुश्रुत कहता है कि शरीरके दोष और रोगक नाशक होनेसे इसको निरूह कहते हैं, इसका दूसरा नाम आस्थापन है; वयस्थापन और आयुस्थापन करनेसे इसका नाम आस्थापन है ॥ ११७ ॥

पक्षाद्विरेकोवान्तस्यततश्चापिनिरूहणम् ।

सद्योनिरूढोऽनुवास्यःसप्तरात्राद्विरेचितः ११८

अर्थ—विरेचन और वमन कियेको पंद्रह दिनके पीछे निरूहण करावै जिसने निरूह और अनुवासन कियाहो, उसपर सात रात्रिके पीछे विरेचनका प्रयोग करे ॥ ११८ ॥

मधुस्नेहेनकल्काख्यःकषायावापतःक्रमात् ।

त्रीणिपट्वेदशत्रीणिपलान्यनिलरोगिषु ॥ ११९ ॥

पित्तेचत्वारिचत्वारिद्वेद्वेपंचचतुष्टयम् ।

पट्त्रीणिद्वेदशत्रीणिकफेचापिनिरूहणम् ॥१२०॥

अर्थ—जिन रोगोंमें वायु प्रबलहो उनमें मधु ३ पल, स्नेह ६

१ स्नेहनं पक्वस्नेहः आमस्य निषिद्धत्वात् “ नचामं प्रणयेत् स्नेहं सद्यते स्नेहयेत् शुद्धमिति दृढबलत्वात्” । पक्वस्नेहश्च वातव्याधौ वक्ष्य-
माणो नारायणप्रसारणीसैन्धवादितैलादिकः । एवमनुवासेऽपि ॥
कल्को मदनफलादीनाम् । कषायो दशमूलादीनाम् । आवापः काञ्चिक-
जम्बीररसमांसरसादीनाम् । त्रीणि इत्यादि वातरोगे क्रमाद्यथाक्रमं ।

पल, कल्क २ पल, काढ़ा १० पल और कांजी आदिकी मात्रा २ पल प्रयोग करे । पित्तकी प्रचलतामें मधु ४ पल, स्नेह ४ पल, कल्क २ पल, काय १० पल, दूध व कांजी आदि ४ पल । कफके कोषमें मधु ६ पल, स्नेह ३ पल, कल्क दोपल, काढ़ा १० पल और दूध व कांजीआदि तीनसे निरूहण करे ॥ ११९ ॥ १२० ॥

शाङ्गधरमतमाह।

निरूहवस्तिर्वहुधाभिद्यतेकारणान्तरैः ।

तैरेवतस्यनामानिकृतानिमुनिपुंगवैः ॥ १२१ ॥

अर्थ-निरूहवस्ति दूसरे कारणोंके भेदसे अनेक प्रकारमें विभक्त है । इस कारण मुनिलोगोंकरके उसका कारण अनुयायीनाम नियत हुआ है ॥ १२१ ॥

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः ।

स्वस्थानस्थापनादोषधातूनां स्थापनं मतम् १२२ ॥

अर्थ-निरूहका दूसरा नाम आस्थापन है । दोष और धातु-को शुद्ध करती है और यथास्थानमें स्थापन करती है, इस कारण पंडितोंने इसका नाम आस्थापन रक्खा है ॥ १२२ ॥

निरूहस्य प्रमाणञ्च प्रस्थं पादोत्तरं परम् ।

मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनञ्च कुडवास्त्रयः ॥ १२३ ॥

अर्थ-निरूहकी प्रधानमात्रा ५२ ॥ ढाई सेर है । मध्यममात्रा दो सेर और हीनमात्रा डेढ़सेर है ॥ १२३ ॥

मधु-नखीणि पलानि, स्नेहस्य षट्, कल्कस्य द्वे, कषायस्य दश, वि-
नि चं भावापस्य । एवं पित्ते मधुनश्चत्वारि, स्नेहस्य च चत्वारि, क-
ल्कस्य द्वे, कषायस्य द्विपंचेति दशैत्यर्थः । भावाप्यस्य च चतुष्टयमिति
एवं कफे मधुनः षट्पलानांति योग्यम् ॥

अतिस्निग्धोत्क्लिष्टदोषः क्षतोरस्कः कृशस्तथा ।

आध्मानच्छर्दिहिकार्शः कासश्वासप्रपीडितः १२४॥

गुदशोथातिसाराक्तो विपूचीकुष्ठसंयुतः ।

गर्भिणीमधुमेहीचनास्थाप्यश्च जलोदरी ॥ १२५ ॥

अर्थ-अतिस्निग्ध, उत्क्लिष्टदोषवाला, जिसके डरमें क्षत हो, दुर्बल, पेटका अफारा, वमि, हिचकी, बवासीर, खांसी, दमा, गुदामें दंद, शोथ, अतिसार, विपूचिका, कौढ, मधुमेह और जलोदरादि रोगवालोंको और गर्भिणीको आस्थापन प्रयोग न करावै ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

वातव्याधायुदावर्त्तवातासृग्विषमज्वरे ।

मूच्छातृष्णादरानाहमूत्रकृच्छ्राश्मरीषुच ॥ १२६ ॥

वृद्ध्यासृग्दरमन्दाग्निप्रमेहेपुनिरूहणम् ।

शूलेऽम्लपित्तेहृद्रोगेयोजयेद्विधिवद्बुधः ॥ १२७ ॥

अर्थ-वातव्याधि, उदावर्त्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूच्छा, तृष्णा, उदर, अफारा, सुजाक, पथरी, वृद्धि, प्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूल, अम्लपित्त और हृद्रोगादि रोगसे घिरेहुओंपर यथा योग्यसे चतुर वैद्य निरूहण वा प्रयोग करे ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजितम् ।

मध्याह्ने गृहमध्ये तु यथा योग्यं निरूहयेत् ॥ १२८ ॥

अर्थ-वायु (अधोवायु) मलमूत्रादित्याग कराकर स्निग्ध, शरीरमें पसेवदे । और भूख लगनेके समय आहार न कराकर मध्याह्नकालके समय गृहमें रखकर योग्यतानुसार निरूहणकी क्रियाको करे ॥ १२८ ॥

पल, कल्क २ पल, काढ़ा १० पल और कांजी आदिकी मात्रा २ पल प्रयोग करे । पित्तकी प्रचलतामें मधु ४ पल, स्नेह ४ पल, कल्क २ पल, काथ १० पल, दूध व कांजी आदि ४ पल । कफके कोपमें मधु ६ पल, स्नेह ३ पल, कल्क दोपल, काढ़ा १० पल और दूध व कांजीआदि तीनसे निरुहण करे ॥ ११९ ॥ १२० ॥

शार्ङ्गधरमतमाह।

निरुहवस्तिर्वहुधाभिद्यतेकारणान्तरैः ।

तैरेवतस्यनामानिकृतानिमुनिपुंगवैः ॥ १२१॥

अर्थ-निरुहवस्ति दूसरे कारणोंके भेदसे अनेक प्रकारमें विभक्त है । इस कारण मुनिलोगोंकरके उसका कारण अनुयायीनाम नियत हुआ है ॥ १२१ ॥

निरुहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः ।

स्वस्थानस्थापनादोषधातूनां स्थापनं मतम् १२२ ॥

अर्थ-निरुहका दूसरा नाम आस्थापन है । दोष और धातु-को शुद्ध करती है और यथास्थानमें स्थापन करती है, इस कारण पंडितोंने इसका नाम आस्थापन रक्खा है ॥ १२२ ॥

निरुहस्य प्रमाणञ्च प्रस्थं पादोत्तरं परम् ।

मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनञ्च कुडवास्त्रयः ॥ १२३ ॥

अर्थ-निरुहकी प्रधानमात्रा ५२॥ डाई सेर है । मध्यममात्रा दो सेर और हीनमात्रा डेढ़सेर है ॥ १२३ ॥

मधुनस्त्रीणि पलानि, स्नेहस्य षट्, कल्कस्य द्वे, कषायस्य दश नि चं भावापस्य । एवं पित्ते मधुनश्चत्वारि, स्नेहस्य च चात्वा स्यस्य द्वे, कषायस्य द्विपंचेति दशोत्तरं । भावाप्यस्य च च एवं कफे मधुनः षट्पलानोति योग्यम् ॥

अतिस्निग्धोत्क्लिष्टदोषः क्षतोरस्कः कृशस्तथा ।

आध्मानच्छर्दिहिकार्शः कासश्वासप्रपीडितः १२४ ॥

गुदशोथातिसाराक्तो विपूचीकुष्ठसंयुतः ।

गर्भिणीमधुमेहीचनास्थाप्यश्च जलोदरी ॥ १२५ ॥

अर्थ-अतिस्निग्ध, उत्क्लिष्टदोषवाला, जिसके डरमें क्षत हो, दुर्बल, पेटका अफारा, वमि, हिचकी, बवासीर, खांसी, दमा, गुदामें दर्द, शोथ, अतिसार, विपूचिका, कोढ़, मधुमेह और जलोदरादि रोगवालोंको और गर्भिणीको आस्थापन प्रयोग न करावै ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

वातव्याधायुदावर्त्तवातासृग्विषमज्वरे ।

मूर्च्छातृष्णादरानाहमूत्रकृच्छ्राश्मरीपुच ॥ १२६ ॥

वृद्ध्यासृग्दरमन्दाग्निप्रमेहेषु निरूहणम् ।

शूलेऽम्लपित्ते हृद्रोगेऽप्येते द्विविधदुधः ॥ १२७ ॥

अर्थ-वातव्याधि, उदावर्त्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, तृष्णा, उदर, अफारा, सुजाक, पयरी, वृद्धि, प्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूल, अम्लपित्त और हृद्रोगादिरोगसे विरेदुओंपर यथा योग्यसे चतुर वैद्य निरूहण वा प्रयोग करे ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

उत्सृष्टानिलविषमूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजितम् ।

मध्याह्ने गृहमध्ये तु यथा योग्यं निरूहयेत् ॥ १२८ ॥

अर्थ-वायु (अघोवायु) मलमूत्रादित्याग कराकर स्निग्ध, शरीरमें पसेवदे । और भूख लगनेके समय आहार न कराकर मध्याह्नकालके समय गृहमें रखकर योग्यतानुसार निरूहणकी क्रियाको करे ॥ १२८ ॥

पल, कल्क २ पल, काढ़ा १० पल और कांजी आदिकी मात्रा २ पल प्रयोग करे । पित्तकी प्रबलतामें मधु ४ पल, स्नेह ४ पल, कल्क २ पल, काय १० पल, दूध व कांजी आदि ४ पल । कफके कोषमें मधु ६ पल, स्नेह ३ पल, कल्क दोपल, काढ़ा १० पल और दूध व कांजीआदि तीनसे निरुहण करे ॥ ११९ ॥ १२० ॥

शार्ङ्गधरमतमाह।

निरुहवस्तिर्वहुधाभिद्यतेकारणान्तरैः ।

तैरेवंतस्यनामानिकृतानिमुनिपुंगवैः ॥ १२१॥

अर्थ—निरुहवस्ति दूसरे कारणोंके भेदसे अनेक प्रकारमें विभक्त है । इस कारण मुनिलोगोंकरके उसका कारण अनुयायीनाम नियत हुआ है ॥ १२१ ॥

निरुहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः ।

स्वस्थानस्थापनादोषधातूनां स्थापनं मतम् १२२ ॥

अर्थ—निरुहका दूसरा नाम आस्थापन है । दोष और धातु-को शुद्ध करती है और यथास्थानमें स्थापन करती है, इस कारण पंडितोंने इसका नाम आस्थापन रक्खा है ॥ १२२ ॥

निरुहस्यप्रमाणञ्च प्रस्थं पादोत्तरं परम् ।

मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनञ्च कुडवास्त्रयः ॥ १२३ ॥

अर्थ—निरुहकी प्रधानमात्रा ५२ ॥ ढाई सेर है । मध्यममात्रा दो सेर और हीनमात्रा डेढ़सेर है ॥ १२३ ॥

मधु-नखीणि पलानि, स्नेहस्य षट्, कल्कस्य द्वे, कषायस्य दश, त्रि-
णि च भावापस्य । एवं पित्ते मधुनश्चात्वारि, स्नेहस्य च चत्वारि, क-
ल्कस्य द्वे, कषायस्य द्विपंचेति दशोत्तरं । भावाप्यस्य च चतु-
र्यं कफे मधुनः षट्पलानि ति योग्यम् ॥

तो चतुर वैद्य इसप्रकार यथायोग्यभावसे निरुहवस्तिका प्रयोग करे।इस्से योग्यफल पायाजाता है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

पूर्वोक्तेनविधानेनंगुदेवस्तिनिधापयेत् ।

त्रिंशन्मात्रास्थितोवस्तिस्तत्रउत्कटुकोभवेत् १३४

यावत्पय्येतिहस्ताभ्रंदाक्षिणंजानुमंडलम् ।

निमेषोन्मेषकालोवासामात्रापरिकीर्त्तिता ॥ १३५ ॥

"उत्कटुकोभवेदिति वस्तेरागमनाय उत्कटुक इति ।

उद्धत इति लोके । एतच्च मृदुकोष्ठं प्रतिवेगिनश्च ।

अवेगिनं प्रति क्रूरकोष्ठं प्रतियथा" ॥ १३६ ॥

अर्थ—पहले कहे हुए अनुवासनकी विधिके अनुसार निरुह-
णभी गुदामें प्रयोग करे । मृदुकोष्ठमें ३० मात्रा काल वस्ति
धारण कराकर फिर उत्कटाभावसे बिठलावै । दा-
हिनी जांघके ऊपर हाथ रखके पर्यायके क्रमसे
केवल एकबार हाथ घुमानेमें जितना समय लगता है, तित-
ना समय, अथवा निमेषवा उन्मेष कालतक वस्ति धारण
करनेका योग्य समय है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

जानुमण्डलमावेष्टोदत्तं दक्षिणपाणिना ।

कृष्णनेत्रच्छटाशब्दशतं तिष्ठेदवेगवान् ॥

"कृष्णनेत्रोवहिष्कृतनलिकः ।

छटातुरीतिख्याता" ॥ १३७ ॥

अर्थ—कठिन फोटा होतो दाहिने हाथसे जानुमंडलको
घेष्टन करके नलको प्रवेश कराकर शततुरी (एकशत अंगलकी
एक तुरी होती है) काल अपेक्षा करे ॥ १३७ ॥

स्नेहवस्तिविधानेनबुधःकुर्व्यान्निरुहणम् ।
जातेनिरुहेचततोभवेदुत्कटुकासनः ॥ १२९ ॥
तिष्ठेन्मुहूर्तमात्रन्तुनिरुहागमनेच्छया ।
अनायातंमुहूर्तान्तेनिरुहंशोधनैर्हरेत् ॥ १३० ॥

अर्थ—स्नेहवस्तीकी विधिके अनुसार निरुहणक्रिया करे ।
निरुहणक्रिया की जानेपर उसके लौट आनेकी प्रतीक्षा-
करके मुहूर्ततक उत्कटासनपर (उत्कटपांवसे) बैठे । यदि
एक मुहूर्तमेंभी निरुह न आवे, तो निरुहके लौट आनेकी
क्रियाकरे ॥ १२९ ॥ १३० ॥

सम्यक्निरुहस्यलक्षणमाह ।

नधावत्यौषधंपार्णिनतिष्ठत्यवलिप्यच ।
नकरोतिचसीमन्तंसेनिरुहःसुयोजितः ॥ १३१ ॥
“नधावतिनपृथग्भवति १ सीमन्तंतेलादिरेखाम् ।
एतेनमधुस्नेहादीनामपृथग्भेदेइत्युक्तंभवति” १३२
अतएवोक्तम् ।

कल्कस्नेहकपायाणामविवेकाद्भिषग्वरैः ।
वास्तिस्तुकलिकतःप्रोक्तस्तस्यादानंतथार्थकृत् १३३

अर्थ—अच्छेनिरुहके लक्षण । चिकित्सामृतमें कहा है कि
भलाभीतिसे निरुहणक्रियाके करनेकी औषधी हाथमें लगनेसे
अलग होकर गिर नहीं और हाथमें लेप करनेपर गाढ़ी होकर
हाथहीमें रह जातेलादिकी रेखाभि दिखाई नहीं दे, ऐसे
लक्षण हों तो औषधिकी भला प्रयोग हुआ जाने । इसकारण
कल्क, स्नेह और कपायादिकी परस्पर अभिन्नता दिखादेई

तो चतुर वैद्य इसप्रकार यथायोग्यभावसे निरुहवस्तिका प्रयोग करे।इस्से योग्यफल पायाजाता है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

पूर्वोक्तेनविधानेनंगुदेवस्तिन्निधापयेत् ।

त्रिंशन्मात्रास्थितोवस्तिस्तत्रउत्कटुकोभवेत् १३४

यावत्पथ्येतिहस्ताभ्रंदाक्षिणंजानुमंडलम् ।

निमेपोन्मेपकालोवासामात्रापरिकीर्तिता ॥ १३५ ॥

“उत्कटुकोभवेदितिचस्तेरागमनायउत्कटुकइति ।

उद्गतइतिलोके । एतच्चमृदुकोष्ठंप्रतिवेगिनश्च ।

अवेगिनंप्रतिहूरकोष्ठंप्रतियथा” ॥ १३६ ॥

अर्थ—पहले कहे हुए अनुवासनकी विधिके अनुसार निरुह-
णभी गुदामें प्रयोग करे । मृदुकोष्ठमें ३० मात्रा काल वस्ति
धारणकराकर फिर उत्कटाभावसे बिठलावै । दा-
हिनी जांघके ऊपर हाथ रखके पर्यायके क्रमसे
केवल एकवार हाथ घुमानेमें जितना समय लगता है, तित-
ना समय, अथवा निमेपवा टन्मेप कालतक वस्ति धारण
करनेका योग्य समय है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

जानुमण्डलमावेष्टोदत्तंदक्षिणपाणिना ।

कृष्णनेत्रच्छटाशब्दशतंतितिष्टेदवेगवान् ॥

“कृष्णनेत्रोवहिष्कृतनलिकः ।

छटातुरीतिख्याता ” ॥ १३७ ॥

अर्थ—कठिन कोटा होतो दाहिने हाथसे जानुमंडलको
घेष्टन करके नलको प्रवेश कराकर शततुरी (एकशत अंगलकी
एक तुरी होतीहै) काल अपेक्षा करे ॥ १३७ ॥

द्वितीयंवातृतीयंवाचतुर्थंवायथार्हतः ।

पुटंप्रदापयेद्वैद्योबुद्धारोगबलाबलम् ॥

सम्यङ्गिरूढलिङ्गेतुप्राप्तेवस्तिनिवारयेत् ॥ १३८ ॥

“यथार्हइति यो यावन्तं पुटमर्हति तस्य तावन्तं पुटं दापयेदित्यर्थः ”

अर्थ—रोगीका बलाबल विचारके दो तीन अथवा चार वारतक, जो जितनी वस्तिके योग्य है तिसपर तितनीही बार प्रयोगकरे, जब भलीभांतिसे निरूहके लक्षण प्राप्त होजाय तब वस्तिका प्रयोग बन्द करे ॥ १३८ ॥

अन्यच्च ।

नाभिप्रदेशश्चकटिश्चगत्वा

कुक्षिसमालोव्यपुनश्चसृष्टम् ॥

संस्निग्धकायंसपुरीषदोषः

सम्यक्सुखेनेतिचयःसवस्तिः ॥ १३९ ॥

प्रसृष्टविष्णुमूत्रसमीरणत्वं

रुच्यग्निवृद्ध्याशयलाघवानि ॥

वेगोपशान्तिःप्रकृतिस्थिताच्च

बलञ्चतत्स्यात्सुनिरूढलिङ्गम् ॥ १४० ॥

अर्थ—स्निग्ध शरीरमें भलीभांतिसे वस्तिका प्रयोगहो, फमर, नाभि और कोखको उथलपुथलकर मलके साथ दोपको बाहर निकालदेताहै; भलीभांतिसे निरूहण होने पर घास, मूत्र और मलकी सरलता, आहारमें रुचि, अग्निकी वृद्धि, आशयकी लघुता, रोगका दूरहोना और देहस्थ होकर बल उत्पन्न होताहै ॥ १३९ ॥ १४० ॥

असम्यङ्निरुहलक्षणमाह ।

स्याद्धृच्छिरोरुगुदकुक्षिलिङ्गे

शोथःप्रतिश्यापारिकर्तिकाच ।

हृष्टासिकामारुतमूत्रसंगः

श्वासोनसम्यक्चनिरुहितेस्यात् ॥ १४१ ॥

अयोगश्चातियोगश्चनिरुहस्यविरेकवत् १४२॥

इतिनिरुहवस्तिविधिः ।

अर्थ-भलीभांति निरुह नहो, तो हृदय और शिरमें वर्द, गुदा, कोख, लिंगमें पीडा, और शोथ, जुकाम हिचकी, वायु और मूत्रकी रुकावट, और श्वासरोग होताहै । विरेचनकी समान निरुहकाभी अयोग वा अति-योग होताहै ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अयोत्तरवस्तिमाह ।

अतःपरंप्रवक्ष्यामिवस्तिमुत्तरसंज्ञितम् ।

द्वादशांगुलकंनेत्रमध्येचकृतकर्णिकम् ॥

मालतीपुष्पवृन्ताभंछिद्रंसर्पपनिर्गमम् ॥१४३॥

अर्थ-उत्तरवस्तिकी विधि कही जातीहै-उत्तरवस्ति-का नल १२ अंगुल लम्बाहो । उसके बीचमें कर्णिका बनानी चाहिये । मालतीफूलके वृन्त (फल, पुष्प, पत्रादिका मूल) की समान स्थूलहो, तिसमें छेद ऐसा करे जिसमेंसे होकर सरसों निकल सके ॥ १४३ ॥

पंचविंशतिवर्षाणामध्येमात्राद्विकार्षिकी ।

तदूर्ध्वपलमात्राचस्नेहस्योक्ताभिपग्वरैः ॥ १४४ ॥

अर्थ-पचीस वर्षसे कम उमरवालेके लिये स्नेहकी मात्रा २ कर्ष (४तो०)है । तिस्से ऊपर एक पल मात्राका प्रयोगकरे १४४

अथास्थापनशुद्धस्यतृप्तस्यस्नानभोजनैः ।

स्थितस्यजानुमात्रेणपीठेऽन्विष्यशलाकया ॥ १४५ ॥

स्निग्धयामेद्रमार्गेणततोनेत्रंनियोजयेत् ।

शनैःशनैर्धृताभ्यक्तमेद्रमन्ध्रांगुलानिपट् ॥ १४५ ॥

ततोऽवपीडयेद्वास्तिशनैर्नेत्रञ्चनिर्हरेत् ।

ततःप्रत्यागतेस्नेहेस्नेहवस्तिक्रमोहितः ॥ १४७ ॥

अर्थ—पहले आस्थापनद्वारा रोगीका शरीर शुद्ध करके स्नान करावै । फिर भलीभांति भोजन कराय पीठीके ऊपर जांघोंके बल बैठावै, फिर स्नेह लगी शलाका (सलाई) से सावधानताके साथ लिंगके छेदकी अनुवेषण करके घी लगादुआ नल धीरे २ लिंगमें घुसादे । छः अंगुल तक नल घुसाकर वस्तिको पीडितकर फिर धीरे २ उस नलकी लिंगमेंसे बाहर निकालले । जब स्नेह आने लगे तो क्रमानुसार स्नेहवस्तिका प्रयोग करता रहै ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

स्त्रीणांकनिष्ठिकास्थूलंनेत्रंकुर्व्यादृशांगुलम् ।

मुद्रप्रवेश्यंयोज्यञ्चयोन्यन्तश्चतुरङ्गुलम् ॥ १४८ ॥

द्व्यंगुलंमूत्रमार्गेचसूक्ष्मंनेत्रंनियोजयेत् ॥

मूत्रकृच्छ्रविकारेषुवालानामेकमंगुलम् ॥ १४९ ॥

अर्थ—स्त्रियोंके लिये उत्तरवस्तिका नल दश अंगुल लम्बा हो उसके अगले हिस्सेमें इतना छेद हो कि जिसमेंको एक भ्रूणका दाना निकलसके । अपत्यमार्गमें (योनिमें) वस्तिका प्रयोग करना होता तो उसके ४ अंगुलकी बराबर, जो मुजाकादिरोगमें, मूत्ररन्ध्रमें वस्तिका प्रयोग करना हो तो २ अंगुल नल प्रवेश करावै । परन्तु वालिकाके मूत्ररन्ध्रमें एक अंगुल नल प्रवेश करना ठीक है ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

यदाहवाग्भटः ।

स्त्रीणामार्तवकालेतुयोनिर्गृह्णात्यपावृतः ।

विदधीततदातस्मादनृतावपिचात्यये ॥

योनिविभ्रंशशूलेषुयोनिव्यापदसृग्दरे ॥ १५० ॥

अर्थ—ऋतुवाली स्त्रियोंका योनिद्वार खुलाहुआ रहताहै । अतएव इससमय वस्तिका प्रयोग करनेसे स्नेह योनिमें सहजसे प्रवेशकर सकता है । इसकारण योनिकन्द (योनिभ्रंश) योनिपीडा, योनिव्यापत्त और प्रदररोगमें रजस्वलावस्थामें स्त्रियोंकी योनिके मार्गमें उत्तरवस्तिका प्रयोग करना चाहिये । परन्तु किसीप्रकारका मारात्मकरोग होवै, तो ऋतुके सिवाय और कालमें भी उत्तरवस्तिका प्रयोग कियाजा सकता है ॥ १५० ॥

शनैर्निष्कम्पमाधेयंसूक्ष्मनेत्रंविचक्षणैः ।

योनिमार्गेषुनारीणांस्नेहमात्राद्विपालिकी ॥ १५१ ॥

अर्थ—चतुर चिकित्सकको चाहिये कि धीरे २ स्त्रियोंकी योनिमें सूक्ष्म नल प्रवेश करादे । गर्भाशय शुद्ध करनेके लिये स्नेहकी मात्रा दोपलतक प्रयोगकरे ॥ १५१ ॥

उत्तानायैस्त्रियैदद्यादूर्ध्वजान्वैविचक्षणः ।

अप्रत्यागच्छतिभिपग्वस्तावुत्तरसंज्ञिते ॥ १५२ ॥

भूयोवस्तिर्विधातव्यःसंयुक्तैःशोधनैर्गणैः ।

फलवर्त्तिनिदध्याद्रायोनिमार्गेदृढांभिपक् ॥

मूत्रैर्विनिःसृतांस्निग्धांशोधनद्रव्यसंयुताम् ॥ १५३ ॥

अर्थ—स्त्रियोंपर उत्तरवस्तिका प्रयोग करनाहो तो उनको चित्तलिटाकर दोनोंऊरूकी झुकवादे और दोनोंजांघोंको ऊंचा करके चतुर चिकित्सक वस्तिका प्रयोग करे । जो उत्तरवस्ति समयानुसार नलैटे तो फिर संशोधकद्रव्ययुक्त वस्तिका प्रयोग करे, अथवा योनिमार्गमें, मूत्रनिकालनेवाला और स्निग्ध

संशोधकद्रव्ययुक्त मजबूत बत्ती चढावै ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

दह्यमानेतथावस्तौदद्याद्वर्तिविशारदः ।

क्षीरवृक्षकपायेणपयसाशीतलेनच ॥ १५४ ॥

अर्थ—वस्तिक्रियासे कोईस्थान दग्ध होजाय तो क्षीरवृक्षके कपाय और शीतल जलसे फिर वस्तिका प्रयोग करे ॥ १५४ ॥

वस्तिःशुक्ररुजःपुंसांस्त्रीणामार्तवजंरुजः ।

हन्यादुत्तरवस्तिस्तुनोचितोमेहिनांकचित् ॥ १५५ ॥

अर्थ—वस्तिके प्रयोगसे पुरुषका शुक्रदोष और स्त्रियोंका रजो-दोष नाश होजाता है । परन्तु प्रमेहरोगवालेपर कभी उत्तरव-स्तिका प्रयोग नकरै ॥ १५५ ॥

सम्यग्दत्तस्यलिङ्गानिव्यापदःक्रमएवच ।

वस्तेरुत्तरसंज्ञस्यसमानंस्नेहवस्तिना ॥ १५६ ॥

अर्थ—उत्तरवस्तिकी भलीभांतिसे सिद्धि और उसको व्यापत्तिके लक्षण और चिकित्साविधि सब स्नेहवस्तिकी समान है ॥ १५६ ॥

घृताभ्यक्तेगुदेक्षेप्याश्लक्ष्णास्वांगुष्ठसन्निभा ।

मलप्रवर्तिनीवर्तिःफलवर्तिश्चसास्मृता ॥ १५७ ॥

अर्थ—गुदामें घी मलकर, रोगीअंगूठेकी बराबर और साफ जो मलकी लानेवाली बत्तीका प्रयोग किया जाता है तिसको फलवर्ति कहतें हैं ॥ १५७ ॥

आनन्दसेनस्त्वाह ।

वस्तिमाशायया ।

अनुवासनभेदश्चमात्रावस्तिरुदीरितः ।

पलाद्धमुत्तरोवस्तेर्मात्रावस्तेःपलद्वयम् ॥ १५८ ॥

यापनास्नेहवस्तिश्चद्विवेतोपद्रूपलान्विता ।

पिच्छावस्तिर्भवेत्प्रस्थःसपादःकीर्तितोऽपरैः ॥ १५९ ॥

यापनावस्तिरितिवातविकारयापनार्थयोवस्तिरित्यर्थः

अर्थ—उतरवस्तिकी पूर्णमात्रा अर्द्धपल (४ तो०) है । मात्रावस्तिकी दोपल है । और यापनावस्ति (वातविकारमें जिस वस्तिका प्रयोग किया जाता है) और स्नेहवस्ति इनद्वानों की मात्रा छयपल है । पिच्छावस्तिकी मात्रा एकप्रस्थ, कोईकोई सवासेर कहते हैं ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

नचैकान्तेचनिर्दिष्टेप्यत्राभिनिविशेद्बुधः ॥ १६० ॥

भवेत्कदाचित्कार्य्यापिविरुद्धाभिमतक्रिया १६१ ॥

“अभिनिविशेन्निश्चयंकुर्यादित्यर्थः । अभिमता,

क्रियायद्यपिविरुद्धाभवेत्तथापिकार्य्यैतिशेषः ।

अर्थ—चिकित्सक लोगोंको केवल शास्त्रमें नियत हुई क्रियाके भरोसे रहकर तिसके अनुसार इलाज नहीं करना चाहिये । क्योंकि कहीं २ विरुद्ध क्रियाका प्रयोजनभी होता है ॥ १६० ॥ १६१ ॥

अन्यञ्च ।

दीयतेक्षीरतैलयोर्निरूहःसनिगद्यते ।

वस्तिभिर्दीयतेयस्मात्तस्माद्वस्तिरितिस्मृतः १६२

अर्थ—दूध और तैलादि स्नेह वस्तुओंसे जो वस्तुका प्रयोग किया जाता है तिसको निरूह कहते हैं । वस्ति (मृगादिके द्वारा) प्रयोग होती है इससे उसे वस्ति कहते हैं ॥ १६२ ॥

अत्रानुवासनारूप्योहिवस्तिर्यःसोऽत्रकंथ्यते ।

पूर्वमेवततोवस्तिर्निरूहाख्योभविष्यति ॥

निरूहादुत्तरश्चैववस्तिःस्यादुत्तराभिधः ॥ १६३ ॥

अर्थ—अनुवासननामक वस्ति कही जाती है। पहले अनुवासनवस्ति, फिर निरूहवस्ति और तदुपरान्त उत्तरवस्ति है ॥ १६३ ॥

अनुवास्यस्तुरूक्षःस्यात्तीक्ष्णाग्निःकेवलानिली ।

वानुवास्यस्तुकुण्ठीस्यान्मेहीस्थूलस्तथोदरी ॥ १६४

नास्थाप्यानानुवास्याः स्युरजीर्णान्मादतृड्युताः ।

शोथमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षतातुराः ॥ १६५ ॥

अर्थ—रुखी देहवाला तीक्ष्णदेहवाला वायुरोगसे घिरे मनुष्य-
गण अनुवासनके योग्य हैं । कोठ, प्रमेह, स्थूल उदर, अजीर्ण,
उन्माद, प्यास, शोथ, मूर्च्छा अरुचि, भय, दमा, खांसी और
क्षतवाले रोगी आस्थापन और अनुवासनके अयोग्य हैं ॥ १६५ ॥

धूमःपित्तानिलौकुर्यादवश्यायःकफानिलौ ॥ १६६ ॥

अर्थ—धुआँ—पित्त और वायुका बढानेवाला है । कुहरा—कफ
और वायुवर्द्धक है ॥ १६६ ॥

धूमपानगुणमाह ।

गौरवंशिरसःशूलंपीनसोर्द्धावभेदकः ।

कर्णाक्षिशूलंकासश्चहिक्काश्वासोगलग्रहः १६७ ॥

दन्तदौर्बल्यमास्त्रावःश्रोत्रघ्राणाक्षिदोषजः ।

पूतिघ्राणास्यगन्धश्चदन्तशूलमरोचकम् ॥ १६८ ॥

हनुमन्याग्रहःकण्डूःक्रिमयोमुखपाण्डुता ।

श्लेष्मप्रसेकौवैस्वय्यगलगण्डाधिजिह्वके १६९ ॥

खालित्वं पिजरत्वञ्चकेशानांपतनंतथा ।

क्षवधुश्चातितन्द्राचबुद्धेर्मोहोतिनिद्रता ॥ १७० ॥

धूमपानात्प्रशाम्यन्तिवलम्भवातिचाधिकम् ७१

अर्थ—धूमपान (इक्का) करनेसे देहका भारीपन, शिरददं,
पीनस, अर्द्धावभेदक, आंख कानका ददं, खांसी, हिचकी,
दमा, गलग्रह, दाँतोंकी कमजोरी, मुँहसे पानीका गिरना,
फान, नाक और नेत्रोंका दोष, नासिका और मुखकी

दुर्गन्ध, दांतोंका दर्द, अरुचि, हनुग्रह मन्थाग्रह (गरदना-
दिक रहजाना) दाद, कीड़े, मुखका श्वेत होजाना, श्लेष्माका
कोप, स्वरभंग, कंठमाला, आधिजिह्वक (जीभका घाव ।
खालित्य(वालेंका फिर न आना), केशोंका रंग बदलना, केशोंका
गिरना, क्ष्वधू (एकप्रकारकी खांसी) तन्द्रा, जुद्धीकी ज-
ड़ता और अतिनिद्राका नाशहो जाताहै, बल बढ़ताहै १७१॥

रक्तपित्तान्धवाधिर्य्यतृणमूच्छर्मदमोहकृत् ।

धूमोऽकालेऽतिपीतोवांतत्रशीतोविधिर्मृतः ॥ १७२ ॥

अर्थ—अकालमें या अधिक धूमपान करनेसे रक्तपित्त, अ-
न्धापन, बहरापन, प्यास, मत्तता और मोह उत्पन्न होताहै ।
ऐसी अवस्थामें शीतल क्रिया करे ॥ १७२ ॥

प्रायौगिकः स्नेहिकश्चैरेचनिकएवच ।

कासहारीवामनीयोधूमःपंचविधोमतः ॥ १७३ ॥

“प्रायौगिकः प्रयोगः सुस्थस्य । स्नेहकारी स्नेहिकः ।

दोषविरेचनाद्वैरेचनिकः । कण्ठकोर्यादिभिर्धूम-

पानात्कासहरः । वमनकारी वामनीयः” ॥

अर्थ—प्रायौगिक, स्नेहिक, वैरेचनिक, कासहर और वामन,
यह पांच धूमपान हैं ॥ १७३ ॥

वक्त्रेणैव वमेद्धूमं नस्तो वक्त्रेण वापिवन् ॥ १७४ ॥

उरः कण्ठगते दोषे वक्त्रेण धूममापिवेत् ॥

नासया तुपिवेदोपेशिरोव्राणाक्षिसंश्रये ॥ १७५ ॥

अर्थ—नासिका और मुखमें धूमपान करके मुखसे
छोड़दे । छाती और कण्ठगत रोगमें मुखसे धूमपान । मस्तक,
नासिका और नेत्रोंके रोगमें नासिकासे धूमपान करे ॥ १७५ ॥

१ अश्वस्य वातव्याधौ अत्र हनू संगृहीतौ निश्चलौ लालास्रावश्च ।
जयदत्तः ५५ अ० ।

पूर्ण नहो, दोष दूर नहो, नेत्र और नासिकासे पानी न निकले तबतक गण्डूष धारण करे ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

यस्यौषधस्यगण्डूषस्तस्यैवप्रतिसारणम् ।

कवलश्चापितस्यैवज्ञेयोऽत्रकुशलैर्नरैः ॥ १८६ ॥

अर्थ—जिस २ औषधिसे गण्डूष धारण करनेकी विधि वर्णन कर आये है, अतिसारण और कवलभी उन्हें द्रव्योंसे प्रयोग करे ॥ १८६ ॥

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यंवक्रलाववम् ।

इन्द्रियाणांप्रसादश्चगण्डूपेशुद्धिलक्षणम् ॥ १८७ ॥

हीनयोगात्कफोत्क्लेशोरसाज्ञानारुचिस्तथा ।

अतियोगान्मुखंपाकःशोषस्तृष्णाकुमोभवेत् १८८

अर्थ—जो भलीभांतीसे गण्डूषप्रयोग होजाय तो रोगनाश, मुखका निर्मलता, हलकापन और सब इन्द्रियोंकी प्रसन्नता, होती है । ऐसे लक्षण प्रकाशितहोंतो जानेकी गण्डूषका शुद्ध धारण हुआ । भलीभांति गण्डूषके धारण नहोनेसे कफोत्क्लेश रसज्ञानकी उत्पत्ति और अरुचि उत्पन्न होती है । अधिक क्रियासे मुखपाक, शोष, प्यास और क्लान्ति उत्पन्न होती है ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

अन्यथा ।

मुखंसञ्चार्यतेयातुसामान्नाकवलेहिता ।

असञ्चार्यतुयामात्रागण्डूपेसाप्रकीर्तिता ॥ १८९ ॥

अर्थ—जितनी मात्राका द्रव्यद्रव्य मुखमें रखनेसे सहज ही चलायमान किया जासके उसही परिमाणसे फलके योग्य मात्रा है । और द्रव्यकी जितनी मात्रा मुखमें धारण करनेसे चलायमान नहोसके, यह गण्डूषकी योग्य मात्रा है ॥ १८९ ॥

अथ रक्तमोक्षविधिः ।

अतियुतोहिमृत्युःस्यादारुणावानिलामयाः ॥ १९० ॥

अर्थ—अधिक रुधिर निकलनेसे मृत्यु अथवा दारुण वायुरोग उत्पन्न होता है ॥ १९० ॥

प्रसन्नवर्णेन्द्रियमिन्द्रियार्थानिच्छन्तमव्याहतशक्तिवेगम्
सुखान्वितंपुष्टिवलोपपन्नंप्रसन्नरक्तंपुरुषंवदन्ति १९१॥

अर्थ—रक्तके शुद्ध रहनेसे वर्ण और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता, सब क्रियाओंके करनेमें इन्द्रियोंकी सामर्थ्य, अरोकशक्ति, मल-मूत्रादिका ठीक २ उत्तरना, सुस्थता, शरीरमें पुष्टि और बल उत्पन्न होता है ॥ १९१ ॥

नह्यन्योऽशतीतसप्तत्यर्वाक्श्रुतासृजाम् ॥ १९२॥

अर्थ—सोलह वर्षसे कम अथवा ७० वर्षसे अधिकके मनुष्यका रक्तमोक्षण (फस्त) करना उचित नहीं है ॥ १९२ ॥

अस्निग्धास्वेदितात्यर्थस्वेदितानिलरोगिणाम् ।

गर्भिणीसूतिकाजीर्णपित्तास्रश्वासकासिनाम् १९३

अतिसारोदरच्छर्दिपाण्डुसर्वाङ्गशोपिणाम् ।

स्नेहपीतेप्रयुक्तेषुतथापंचसुकर्मसु ॥१९४॥

नायन्त्रितांशिरांविध्येन्नतिर्यङ्नातिचोत्थिताम् ।

नातिशीतोष्णवातार्तिष्वन्यत्रात्ययिकाकृतात् १५

अर्थ—रुखे, जिसको पसीना न आताहो, जिसको बहुत पसीना आताहो, वातरोगयुक्त, गर्भिणी, सूतिका, अजीर्ण, रक्तपित्त, दमा, खाँसी अतिसार, उदर, वमन, पाण्डुसे चिरेडूप, और अतिदुबले, स्नेहपीत, और पंचकर्मवाले पुरुषकी फस्त न खोले । जो शिरा वेगके योग्य है तो तिरछे भावसे उनकी शिराको नवेधे । अत्यन्त, शीत, अत्यन्त गरम, अत्यन्त वायु या अवरके दिन फस्त नहीं खोलना चाहिये । परन्तु मारात्मक व्याधि होतो निषिद्धकालमेंभी शिरावेध करे ॥ १९३॥१९४॥१९५ ॥ (इति रक्तमोक्षणम्)

अथ घृततैलमूर्च्छाविधिः ।

(घृतमूर्च्छाविधिः)

पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलुङ्गद्रवैश्च ।

द्रव्यैरेतैः समस्तैः पलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन ॥

आज्यप्रस्थं विफेनं परिचपलगतं मूर्च्छयेद्वैद्यराजः ।

तस्मादामोषदोषं हरति च सकलं वीर्यवत्सौख्यदायी १९६ ।

अर्थ—घृतमूर्च्छाविधि । हरड, बहेडा, आमला, मोथा, हलदी, विजौरा, नीचूका रस, यही छय घृतको मूर्च्छित करनेके द्रव्य हैं । इनमेंसे प्रत्येकका परिमाण एकपल (८ तो०) ग्रहण करके, ४ सेरधी चौगुने जलके साथ मन्दी आगके तापसे पकावै । पहले घीको पकावै, जब फेनराहित हो जाय, तब मूर्च्छाके समस्त द्रव्य घीमें डालै । मूर्च्छा करनेसे घृतका आमदोष नाश होकर वह वीर्यवन्त और सुखदायी होजाताहै ॥ १९६ ॥

कटुतैलमूर्च्छाविधिः ।

वयस्थारजनीमुस्तविल्वदाडिमकेशरैः ।

कृष्णाजीरकह्रीवैरनलिकैः सविभीतकैः ॥ १९७ ॥

एतैः समांसैः प्रस्थे च कर्पमात्रं प्रयोजयेत् ।

कटुतैलं पचेत्तेन आमदोषहरं परम् ॥ १९८ ॥

अर्थ—कड़वे तेलको मूर्च्छित करनेकी विधि । आमला, हलदी, मोथा, बेलकी छाल, दारवीकी छाल, नागकेशर, कालाजीरा, चाला, यवारी बहेडा, और मजीठ यह ग्यारह द्रव्य कटुते तेलको मूर्च्छित करते हैं । ४ सेर तेलमें दोदो तोलों यह ग्यारह चीजें डालै और ४ गुने जलसे सिद्धकरे, इसके पाककी विधि पहलेकी अनुसार है । मूर्च्छासे कड़वे तेलका आमदोष नष्ट होजाता है ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

परंदतैलमूर्च्छाविधिः ।

विकसामुस्तकंधान्यत्रिफलावैजयन्तिका ।

ह्रीवेरवनखर्जूरवटशृङ्गानिशायुगम् ॥ १९९ ॥

नलिकाभेपजंदेयंकेतकीचसमंसमम् ।

प्रस्थेदेयंशाणमितंमूर्च्छनेदधिकांजिकम् ॥ २०० ॥

अर्थ-अण्डीके तेलको मूर्च्छित करनेकी विधि-मजीठ मोथा, धनिया, आमला, बहेडा जयंती, वाला, खजूर बडकी दाढी, हलदी, दारुहलदी यवारी, केतकी, दही और कांजी इनसे अण्डीका तेल मूर्च्छित होता है । इनका परिमाण बराबर है । चारचार तोला इन सब चीजोंको लेकर १२ सैर तेलमें पाक करे । विधि पहलेकी अनुसार है १९९॥२००

तिलतैलमूर्च्छाविधिः ।

मञ्जिष्ठारात्रिलोभ्रैर्जलधरनलिकैःसाक्षपथ्यैःकुमार्या ।

सूचीपुष्पांघ्रिनीरैरुपहितमथितैर्गन्धयोगंजहाति ॥

तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपिमूर्च्छाविधौ ।

येचान्येत्रिफलापयोदरजनीह्रीवेरलोभ्रान्विता ॥

सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्चपादांशिकाः ।

दुर्गन्धंविनिहन्ति तैलमरुणंसौरभ्यमाकुर्वते ॥ २०१ ॥

अर्थ-तिलके तेलको मूर्च्छित करनेकी विधि । मजीठ, हलदी, लोध, मोथा, यवारी, आमला, बहेडा, हरड, केडया-जटा, बडकी दाढी और वाला, इन सबका चूर्ण जलमें मिलाकर तेलमें डाले । और उसमें तेलसे चौगुना जल मिलाकर पाककरे, जब कुछ जल रहजाय तो उतारकर थोडे दिनों-तक बैसेही रखवा रहनेदे । इन हलदी और मजीठादि द्रव्यको मूर्च्छाद्रव्य कहते हैं । इनके परिमाणका नियम यह है कि, जितना तेलहो, तेलके सोलहवाँ हिस्सा मजीठ, मजीठका

अथ घृततैलमूर्च्छाविधिः ।

(घृतमूर्च्छाविधिः)

पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधरंजनीमातुलुङ्गद्रवैश्च ।

द्रव्यैरेतैःसमस्तैःपलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन ॥

आज्यप्रस्थंविफेनंपरिचपलगतंमूर्च्छयेद्वैद्यराजः ।

तस्मादामोपदोषंहरतिचसकलंवीर्यवत्सौख्यदायी १९६ ।

अर्थ-घृतमूर्च्छाविधि । हरड, बहेडा, आमला, मोया, हलदी, विजौरा, नींबूका रस, यही छय घृतको मूर्च्छित करनेके द्रव्य हैं । इनमेंसे प्रत्येकका परिमाण एकपल (८ तो०) ग्रहण करके, ४ सेरधी चौगुने जलके साथ मन्दी आगके तापसे पकावै । पहले घीको पकावै, जब फेनराहित हो जाय, तब मूर्च्छाके समस्त द्रव्य घीमें डालै । मूर्च्छा करनेसे घृतका आमदोष नाश होकर वह वीर्यवन्त और सुखदायी होजाताहै ॥ १९६ ॥

कटुतेलमूर्च्छाविधिः ।

वयस्थारजनीमुस्तबिल्वदाडिमकेशरैः ।

कृष्णाजीरकह्रीविरनलिकैःसविभीतकैः ॥ १९७ ॥

एतैःसमांसैःप्रस्थेचकर्पमात्रंप्रयोजयेत् ।

कटुतैलंपचेत्तेनआमदोषहरंपरम् ॥ १९८ ॥

अर्थ-कडवे तेलको मूर्च्छित करनेकी विधि । आमला, हलदी, मोया, बेलकी छाल, दारवीकी छाल, नागकेशर, फालाजीरा, वाला, यवारी बहेडा, और मजीठ यह ग्यारह द्रव्य कडुवे तेलको मूर्च्छित करते हैं । ४ सेर तेलमें दोदो तोली यह ग्यारह चीजें डाले और ४ गुने जलसे सिद्धकरे; इसके पाककी विधि पहलेकी अनुसार है । मूर्च्छासे कडुवे तेलका आमदोष नष्ट होजाता है ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

एरंडवैलमूच्छाविधिः ।

विकसामुस्तकंधान्यत्रिफलावैजयन्तिका ।

ह्रीवैरघनखर्जूरवटशृङ्गानिशायुगम् ॥ १९९ ॥

नलिकाभेपजंदेयंकेतकीचसमंसमम् ।

प्रस्थेदेयंशाणमितंमूच्छनेदधिकांजिकम् ॥ २०० ॥

अर्थ-अण्डीके तेलको मूर्च्छित करनेकी विधि-मजीठ मोथा, धनिया, आमला, बहेडा जयंती, वाला, खजूर बडकी दादी, हलदी, दारुहलदी यवारी, केतकी, दही और कांजी इनसे अण्डीका तेल मूर्च्छित होता है । इनका परिमाण बराबर है । चारचार तोला इन सब चीजोंको लेकर २ सेर तेलमें पाक करे । विधि पहलेकी अनुसार है १९९॥२००

तिलतैलमूच्छाविधिः ।

मज्जिपारात्रिलोत्रैर्जलधरनलिकैःसाक्षपथ्यैःकुमार्या ।

सूचीपुष्पांघ्रिनीरैरुपहितमथितैर्गन्धयोगंजहाति ॥

तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपिमूच्छाविधौ ।

नान्येत्रिफलापयोदरजनीह्रीवैरलोत्रान्विता ॥

सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्चपादांशिकाः ।

दुर्गन्धविनिहन्ति तैलमरुणं सैरभ्यमाकुर्वते ॥ २०१ ॥

अर्थ-तिलके तेलको मूर्च्छित करनेकी विधि । मजीठ, हलदी, लोध, मोथा, यवारी, आमला, बहेडा, हरड, केडया-जटा, बडकी दादी और वाला, इन सबका चूर्ण जलमें मिलाकर तेलमें डाले । और उसमें तेलसे चौगुना जल मिलाकर पाककरे, जब कुछ जल रहजाय तो उतारकर थोड़े दिनों-तक वैसही रखवा रहनेदे । इन हलदी और मजीठादि द्रव्यको मूच्छाद्रव्य कहते हैं । इनके परिमाणका नियम यह है कि, जितना तेलहो, तेलके सोलहवाँ हिस्सा मजीठ, मजीठका

श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्क्षौणित्रजोशीरकम् ॥

कस्तूरिनखपूतिशैलजशुभामेथीलवङ्गादिकम् ।

गन्धद्रव्यमिदं प्रदेयमाखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु २०६

अर्थ—गन्धद्रव्य यथा—इलायची, लालचन्दन, कुंकुम, अगर, कपूरकचरी, वालछड, कन्नूर, सफेदचन्दन, गठिवन, कपूर, शिलारस (लोवान), खस, कस्तूरी, नखी, गन्ध-मार्जारवीर्य, गजपीपल, प्रियंगु, मेथी और लोंगादि यह समस्त गन्धद्रव्य विष्णुतैलादिमें डाले ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

अपरगन्धद्रव्यम् ।

देवदारुसरलागुरुत्वचंतेजपत्रधनकुष्ठकुंकुमम् ।

ग्रन्थिपर्णिशठिकोयगन्धकंमांसिकानवसोत्तिकुन्दुरु ॥७॥

पूतिकंमधुरिकैलरानखोचन्दनंसमपरीप्रियङ्गुकम् ।

मेथिकामदसुवास्यचंपकंदेवताडनलिकासपृक्कया ॥८॥

कक्कोलकंकल्कसमानितैलेदेयानिसर्वाणिसुगन्धिकानि ।

अन्यान्यशेषाणिहितानिवैद्यैर्वातापहारीणिसुयोजितानि

अर्थ—और गन्धद्रव्य—देवदारु, धूपसरल, अगर, दाल-चीनी, तेजपात, मोथा, कुडा, कुङ्कुम, गठिवन, गन्धपलाशी, वालछड, कुंदरु, गन्धमार्जारवीर्य, सोया, इलायची, नखी, चन्दन, प्रियंगु, मेथी, कस्तूरी, सुगन्धितचंपा, देवदारु, यगरी, असवर्ग, और शीतलचीनी, यह समस्त गन्धद्रव्य कल्ककी बराबर तेलमें डाले । चतुर वैद्य औरभी वायु नाशक और हितकारी द्रव्य विचारपूर्वक तेलमें डालदे ॥ २०७ ॥ २०८ ॥ २०९

तैलाद्रन्धस्यपादाद्धैदद्यात्तच्छास्त्रविद्विपक् ।

केचिद्गन्धसममन्येसर्वत्रगन्धकर्मणि ॥ २१० ॥

इति ग्रन्थान्तरस्य ।

चौथा अंश जितना हो, उसकी बराबर और सब द्रव्य लेले अर्थात् तेलका परिमाण १६ सैरहो, तो मजीठ एक सैर और हलदी लोधआदि जो और पदार्थ हैं इनमेंसे प्रत्येक पावपावभर ले । मूर्च्छित होनेसे तेलमें दुर्गन्ध नहीं आती, उत्तम सुगन्ध आकर रंगमें लाली आ जाती है । तेलके साथ दूसरे कायादिका पाक करनेके समय समस्त मूर्च्छित द्रव्योंकी छान लेना चाहिये ॥ २०१ ॥

कृत्वा तैलं कटाहे दृढतरा विमले मन्दमन्दानलैस्त-

तैलं निष्फेन भावंगतमिह च यदा शैत्ययुक्तं तदैव ॥ २०२

अर्थ-पहले मजबूत कढ़ाईमें मन्दी २ आग देकर तेलको पकावै । जब झाग उठने बन्द होजाय, तब चूल्हेपरसे उतार ले । जब ठंडा होजाय तो पीसी (जलमें पीसी हुई) हलदी पानीमें घोलकर क्रमानुसार तेलमें डाले, फिर कूटकर जलयुक्त मजीठ धीरे २ तेलमें डाले, फिर मूर्च्छा-के और द्रव्य क्रमानुसार तेलमें डाले ॥ २०२ ॥

तैलमूर्च्छा ।

पत्रं पंचरसैर्युक्तं दधिलाक्षा समन्वितम् ।

मूर्च्छनं कारयेत् प्राज्ञो गन्धवर्णजहाति च ॥ २०३ ॥

अर्थ-पंचरसयुक्त पंचपल्लव और दही व लाखसे मूर्च्छा-पाक देना उचित है । इस्ते तेलका असलीरंग दूर होजाता है; दुर्गन्ध नाश होती है । उत्तमरंग और उत्तम सुगन्ध होती है ॥ २०३ ॥

आम्रजम्बूकपित्थानां बीजपूरका विल्वयोः ।

गन्धकर्मणिसर्वत्र पत्राणि पंचपल्लवम् ॥ २०४ ॥

अर्थ-आम, जामन, कैथ, विजौरानीवू और बेल इन पंच-पत्रसे गन्धपाकदे ॥ २०४ ॥

अथ गन्धद्रव्यम् ।

एलाचन्दनकुंकुमाऽगुरुमुराकक्कोलमांसीशठी ।

श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्शौणित्रजोशिरकम् ॥

कस्तूरिनखपूतिशैलजशुभामेथोलवङ्गादिकम् ।

गन्धद्रव्यमिदं प्रदेयमाखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु २०६

अर्थ-गन्धद्रव्य यथा:-इलायची, लालचन्दन, कुंकुम, अगर, कपूरकचरी, बालछड, कचूर, सफेदचन्दन, गठिवन, कपूर, शिलारस (लोबान), खस, कस्तूरी, नखी, गन्ध-मार्जारवीर्य, गजपीपल, प्रियंगु, मेथी और लोंगादि यह समस्त गन्धद्रव्य विष्णुतैलादिमें डाले ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

अपरंगन्धद्रव्यम् ।

देवदारुसरलागुरुत्वचंतेजपत्रधनकुष्ठकुंकुमम् ।

ग्रन्थिपर्णिशठिकोप्रगन्धकंमांसिकानवखोटिकुन्दुरु ॥७

पूतिकंमधुरिकैलरानखीचन्दनंसमपरंप्रियङ्गुकम् ।

मेथिकामदसुवास्यचंपकंदेवताडनलिकासपृक्कया ॥८॥

कक्कोलकंकलकसमानितैलेदेयानिसर्वाणिसुगन्धिकानि ।

अन्यान्यशेषाणिहितानिवैद्यैर्वातापहारीणिसुयोजितानि

अर्थ-और गन्धद्रव्य-देवदारु, धूपसरल, अगर, दाल-चीनी, तेजपात, मोथा, कुडा, कुङ्कुम, गठिवन, गन्धपलाशी, बालछड, कुंदरु, गन्धमार्जारवीर्य, सोया, इलायची, नखी, चन्दन, प्रियंगु, मेथी, कस्तूरी, सुगन्धितचंपा, देवदारु, यगरी, असवर्ग, और शीतलचीनी, यह समस्त गन्धद्रव्य कलककी बराबर तेलमें डालें । चतुर वैद्य, औरभी वायु नाशक और हितकारी द्रव्य विचारपूर्वक तेलमें डालदे ॥ २०७ ॥ २०८ ॥ २०९

तैलाद्रन्धस्यपादार्द्धदद्यात्तच्छास्त्रविद्विपक्व ।

केचिद्रंधसमंमन्येसर्वत्रगन्धकर्म्मणि ॥ २१० ॥

इति ग्रन्थान्तरस्य ।

अर्थ-शास्त्रके जाननेवाले वैद्यको चाहिये कि, तेलको आठवें हिस्सेकी बराबर सब जगह गन्धद्रव्य डाले । कोई २कल्ककी बराबर गन्धद्रव्य डालनेकी कहते हैं ॥ २१० ॥

मतान्तर ।

कुष्ठञ्चनालुकापूतिरुशीरंश्चेतचंदनम् ।

जटामांसीतेजपत्रनखीमृगमदःफलम् ॥ २११ ॥

कक्कोलंकुंकुमंचोचेलताकस्तूरिकावचा ।

सूक्ष्मैलाऽगुरुमुस्तंचकर्पूरं ग्रन्थिपर्णकम् ॥ २१२ ॥

श्रीवासःकुन्दुरुदेवकुसुमंगन्धमातृका ।

सिंहकंमिपिकामेथीभद्रमुस्तंशठीतथा ॥ २१३ ॥

जातीफलंशैलजश्चदेवदारुसजीरकम् ।

एतानिगन्धद्रव्याणितैलपाकेषुयुक्तिः ॥ २१४ ॥

अर्थ-दूसरे मतसे गन्धद्रव्य-कुडा, यचोरी, गन्धमार्जार-वीर्य, खस, सफेदचन्दन, बालछड, तेजपात, नखी, कस्तूरी, शीतलचीनी, कुङ्कुम, दालचीनी, मुद्गकदाना, वच, छौदी इलायची, अगर, मोथा, कपूर, गठिवन, धूपसरल, कुन्दुरु, लोंग, गन्धमालती, शिलारस, सोया, मेथी, नागरमोथा, गजपीपल, जायफल, गन्धपलाशी, देवदारु और जीरा तेलके पाकमें यह समस्त गन्धद्रव्य डाले ॥ २११ ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ २१४ ॥

इति सानुगादवैद्यकपरिभाषाप्रदीपसंग्रहे चतुर्थे खण्डे ॥ ४ ॥

समाप्तोऽयं ग्रंथः ॥

शुभमस्तु ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेङ्कटेश्वर” छापाखाना-बंबई.